Thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 14 जून 2015

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 14 जून 2015 से 20 जून 2015

आ.कृ. 13 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 24, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

सरस्वती (डी.ए.वी.) कन्या, ढाब खटीकां, ने आर्य समाज लोहगढ़ अमृतसर में यज्ञ किया

आर्यसमाज लोहगढ़ के तत्वावधान में आयोजित साप्ताहिक हवन सत्संग की शृंखला में सरस्वती डी.ए.वी. कन्या सीनियर सैकेण्डरी स्कूल, ढ़ाब खटीकां, अमृतसर द्धारा आयोजित हवन यज्ञ प्रधान श्री जे.के. लूथरा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। यज्ञ में यजमान श्री जुगल किशोर समरा जी व मुख्यअतिथि श्री जे.पी.शूर जी (निदेशक एडिड स्कूलज) थे। विद्यालय की छात्राओं ने भजन प्रस्तुत किया। प्रधान श्री जे.के. लूथरा जी ने यजमान श्री समरा जी का

परिचय देते हुए उनकी उपलब्धियों व कर्तव्यनिष्ठा पर प्रकाश डाला। श्री जे.पी.शूर जी ने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा स्वयं आर्य बने व सभी को श्रेष्ठ आर्य जन बनाएँ। श्री समरा जी ने शिक्षा का महत्व बताते हुए बच्चों को आगे पढ़ने के लिए प्रेरित किया और 10 छात्राओं की पढ़ाई की जिम्मेदारी ली।

दानी सज्जनों के सहयोग से जरुरतमंद छात्राओं को कापियां, वर्दीयां, जूते बांटे गए।

डा. नीलम कामरा ने आए हुए अतिथिगण का धन्यवाद किया। इस अवसर पर आर्य समाज व डी.ए.वी. संस्थाओं के प्राचार्य और अध्यापक/अध्यापिकायें भारी संख्या में उपस्थित हुए।

डी.ए.वी. कोटा में सम्पन्न हुआ 'वैदिक चेतना शिविर'

बच्चों में वेदो के प्रति रुचि जागृत करने, वैदिक ज्ञान व योग को प्रचारित प्रसारित करने, पाखण्डों का खण्डन तथा यज्ञ का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल कोटा मे 5 दिवसीय वैदिक चेतना शिविर का समापन समारोह सम्पन्न हो गया। कार्यक्रम की मुख्य अतिथि रही डॉ. इन्दु तनेजा, प्रसिद्ध शिक्षाविद्, भूतपूर्व प्राचार्या, जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेज, अजमेर एवं मैनेजर डीएवी पब्लिक स्कूल, कोटा। कार्यक्रम की अध्यक्षता की श्री रमेश चन्द्र आर्य ने। इस अवसर पर आर्य समाज के विद्वान् श्री राम प्रसाद याज्ञिक भी उपस्थित थे।

प्राचार्या श्रीमती सरिता रंजन गौतम ने सभी का स्वागत करते हुए देश, समाज और व्यक्तित्व निर्माण में वैदिक चेतना शिविर की अनिवार्यता को रेखांकित किया। श्री राम प्रसाद याज्ञिक ने दयानन्द के नारे 'वेदों की ओर लौटो' को अपनाने की बात कही। इस अवसर पर बच्चों ने दैनिक यज्ञ, योग, प्राणायाम व लाठी प्रदर्शन द्वारा सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया।

मुख्य वक्ता व कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री अर्जुनदेव चढ्ढा ने कहा कि सम्पूर्ण विश्व भारत के वैदिक ज्ञान को अपनाने के लिए तत्पर है। वेदों में ज्ञान –विज्ञान का अथाह कोष है।

शिविर की मुख्य अतिथि डॉ. इन्दु तनेजा ने कहा कि बच्चों को बचपन में दिए गए संस्कार राष्ट्र का भविष्य तय करते है अतः शिक्षकों को अपने आचरण से बच्चों को शिक्षित करना चाहिये।

कार्यक्रम के अन्त में श्री शोभा राम आर्य ने सभी का धन्यवाद ज्ञापित किया।

महात्मा चैतन्यमुनिजी 'श्री मेघजी भाई आर्य साहित्य सम्मान' से सम्मानित

आर्य जगत् के वरिष्ठ साहित्यकार एवं वैदिक प्रवक्ता व आनन्दधाम आश्रम उधमपुर, जम्मू काश्मीर के मुख्य संरक्षक व निदेशक तथा अन्य अनेक आश्रमों, साहित्यिक संस्थाओं के संचालक एवं संरक्षक महात्मा चैतन्यमुनि जी को आर्य समाज सान्ताकुज की ओर से गत दिनों 'श्री मेघजी भाई आर्य साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया। उल्लेखनीय है कि महात्माजी की अब तक लगभग पच्चास साहित्यक एवं आध्यात्मिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं तथा इन्हें अब तक साहित्य अकादमी सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। हिमाचल प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के आर्यवीर संचालक, वेद प्रचार अधिष्ठाता, महामन्त्री तथा वरिष्ठ उपाध्यक्ष व कार्यकारी अध्यक्ष के रूप में इन्होंने अभूतपूर्व सेवा की है जिसके लिए इन्हें सभा की ओर से सम्मानित भी किया गया था। सभा की पत्रिका आर्यवन्दना के सम्पादन से ये बीस वर्षों से जुड़े रहे..... पत्रिका आरंभ करने तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने में इनका अत्यधिक सहयोग रहा है। इन्होने वैदिक वशिष्ठ पत्रिका, शब्द, नवनीत भारती तथा गूंजती घाटियाँ आदि पत्रिकाओं में भी सम्पादन सहयोग प्रदान किया है। ये एक प्रतिष्ठित लेखक ही नहीं बल्कि प्रबुद्ध सैद्धान्तिक वैदिक प्रवक्ता भी हैं जिन्होंने मानव मूल्यों की स्थापना हेतु देश विदेश में वैदिक संस्कृति की सार्वभौमिक विचारधारा को अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से प्रचारित एवं प्रसारित किया है।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

Thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 14 जून, 2015 से 20 जून, 2015

समित्पाणि शिष्य के उद्गार

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

एतास्ते अग्ने समिधः, त्वमिद्धः समिद् भव।
आयुरस्मासु धेहि, अमृतत्वमाचार्याय।।

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः** छन्दः **अनुष्टुप्।**

● **(अग्ने)** हे यज्ञाग्नि! **(एताः)** ये **(ते)** तेरे लिए **(समिधः)** समिधाएँ [हैं], [इनसे] **(त्वं)** तू **(इत्)** निश्चय ही **(सम् इद्धः)** संदीप्त **(भव)** हो। **(अस्मासु)** हम [इनसे] **(त्वं)** तू **(इत्)** निश्चय ही **(सम् इद्धः)** संदीप्त **(भव)** हो। **(अस्मासु)** हम [ब्रह्मचारियों] में **(आयुः)** जीवन, [और] **आचार्याय** (आचार्य) के लिए **(अमृतत्वम्)** अमरत्व **(धेहि)** प्रदान कर।

● मैं समित्पाणि होकर आचार्य के समीप उपनीत होने तथा विद्याध्ययन करने आया हूँ। अपने हाथ में मैं समिधायें इस निमित्त लाया हूँ कि इनसे मैं अग्निहोत्र करूँगा, समिधाओं को एक–एक कर अग्नि में आहुति दूंगा।

हे यज्ञाग्नि! ये तेरे लिए समिधायें हैं, इनसे तू समिद्ध हो, सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त हो। देखो, ये शुष्क समिधायें, जो सर्वथा निस्तेज थीं, अग्नि में पड़कर प्रज्ज्वलित हो उठी हैं। ऐसे ही मुझे भी आचार्य–रूप अग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान एवं सत्कर्मों से प्रज्ज्वलित होना है। मैं निपट अबोध–अज्ञानी बालक अप्रज्ज्वलित समिधाओं के समान ही निस्तेज हूँ, आचार्याधीन गुरुकुल–वास करके मुझे ज्ञान की ज्वालाओं से प्रदीप्त होना है।

आचार्य और ब्रह्मचारियों के मध्य में जलनेवाली हे यज्ञाग्नि! तू हम ब्रह्मचारियों को आयु प्रदान कर, हमारे अन्दर जीवन निहित कर। हम यही नहीं जानते कि इस संसार में किसलिए आये हैं और हमें कहाँ जाना है तथा जीवन किस प्रकार व्यतीत करना है। जीवन जीने की कला का बोध तू हमें करा। हे अग्नि! तू गुरुकुल की गुरु–शिष्य परम्परा का उज्ज्वल प्रतीक है। जो समिधाओं का और तेरा सम्बन्ध है, वही घनिष्ठ सम्बन्ध गुरुकुल में गुरु और शिष्यों का है। गुरुकुल के व्रतपालन, गुरुकुल की दिनचर्या, गुरुकुल के ज्ञानाग्नि–समिन्धन, गुरुकुल की कर्मपरायणता, गुरुकुल की तपस्या, गुरुकुल के संयम, गुरुकुल के योगानुष्ठान आदि सबका तू प्रतीक है। हे व्रतपति अग्नि! तुझमें समिधायें डालते हुए हम इन समस्त भावनाओं को अपने हृदय में धारण करते हैं।

हे गुरुकुलीय अग्निहोत्र की अग्नि! जहाँ तू हमें जीवन प्रदान करेगी, वहाँ हमारे आचार्य को अमृतत्व प्रदान कर। हम ही अपने आचार्य को मार सकते या अमर कर सकते हैं। हम तुझ अग्नि में तपकर ऐसे जीवन के धनी बनें कि हमसे आचार्य की कीर्ति चारों ओर फैले। जब कोई हमें गुणी और सत्कर्मनिष्ठ देखकर पूछेगा कि ये किस आचार्य के शिष्य हैं, तब हमारे आचार्य का नाम अमर होगा। हम यदि आचार्य के नाम को अमर करने में किंचिन्मात्र भी कारण बन सकेंगे, तो हम अपने को धन्य समझेंगे। हे गुरुकुल के अग्नि! तुम्हारी जय हो, हे गुरुकुल के पुण्यश्लोक आचार्य! तुम्हारी जय हो। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

महामन्त्र

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी कि जो मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर और उसकी आज्ञा से अत्यंत प्रेम करके अरण्य अर्थात् शुद्ध–हृदय रूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं। स्थूल शरीर से अन्तर्मुख होकर ध्यान जब परिपक्व होने लगता है तो पहले पांच तन्मात्राओं तथा इन्द्रियों के गोलकों की भिन्न–भिन्न रंग की ज्योतियाँ दिखाई देने लगती हैं। ये हैं तो भौतिक ज्योतियाँ परंतु साधक को विश्वास दिलाती हैं कि तुम ठीक मार्ग पर चल रहे हो।

इसके पश्चात् परिपक्व होते–होते ध्यान जब अपने पड़ाव पर जमता है तो फिर अहंकार का साक्षात्कार होता है, तब और आगे बढ़कर अस्मिता, फिर प्रकृति और अंत में एक बृहद ज्योति आती है जो भौतिक नहीं आत्मिक है और से सारे दृश्य ब्रह्म–रंध्र तथा आज्ञा चक्र वाले हृदय में भी आते हैं और नाभि से दस अंगुल ऊपर अनाहत चक्र वाले हृदय में भी आते हैं। दोनों ही केन्द्रों पर सफलता मिलती है।

अब आगे......

गायत्रीविद् के पाप कैसे जलते हैं?

'बृहदारण्यकोपनिषद्' के हृदय शब्द ने पर्याप्त लिखने पर बाधित कर दिया। अब यह हृदय कोई उलझन की वस्तु न रहा। हाँ, अभी इस उपनिषद् का एक रहस्य और खुलना आवश्यक है, और वह यह कि जिस गायत्रीविद् ने गायत्री का मुख अग्नि जान लिया उसके सब पाप जल जाते हैं।

गायत्री मंत्र तो के दूसरे पाद में बड़े महत्व का शब्द **'भर्ग':** है। इसकी व्याख्या तो यथास्थान होगी; यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि 'भर्ग' शब्द परमात्मा की शक्ति को कहते हैं जो अतिश्रेष्ठ होने के साथ पापनाशक भी है और जैसे अग्नि से जला देने की, दहन कर देने की शक्ति है, ऐसे ही भर्ग शक्ति साधक के पापों को भस्म कर देती है। जब साधक इस भर्गः शब्द का विचार करता हुआ, इस शक्ति के साथ अपने अपना सम्पर्क बना लेगा, तब साधक के पाप रह ही कहाँ जाएँगे!

'बृहदारण्यक' ने गायत्री–मंत्र की कितनी बड़ी महिमा वर्णन की है, इसका कुछ उल्लेख यहाँ कर दिया गया है। अब देखिये कि मनु भगवान् ने गायत्री–जप के संबंध में क्या आदेश किया है।

'मनुस्मृति' में गायत्री–

मनु भगवान् की स्मृति का यह श्लोक मानव को कितना धैर्य बँधानेवाला है–

सहस्र कृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिकं द्विजः।
महतोऽप्येनसो मासात् त्वचेवाहिर्विमुच्यते।।
3. 79..

–जो द्विज एक मास तक बाहर एकान्त स्थान में प्रतिदिन एक हजार बार गायत्री मंत्र का जप करता है, वह बड़े भारी पाप से भी इस प्रकार छूट जाता है, जैसे साँप कैंचुली से।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी
प्रजापतिः।। 2। 77 ।।

–परमेष्ठी प्रजापति ने तीन वेदों से तत् शब्द से आरंभ होने वाले गायत्री मंत्र का एक–एक पाद दुहा।

तत्सवितुर्वरेयण्म्, पहला पाद; **भर्गो देवस्य धीमहि**, दूसरा पाद; और **धियों यो नः प्रचोदयात्**, तीसरा पाद।

एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते। 2 । 78 ।।

– इस (ओम्) अक्षर को, और भूः भुवः स्वः इन तीनों व्याहृतियों– वाली गायत्री को प्रातः–सायं समय जपने वाला विद्वान वेद के स्वाध्याय से पुण्य को प्राप्त होता है।

एतयर्या विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया।
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हतां याति साधुष।। 2. 80.

–इस (गायत्री) ऋचा के जप से रहित और अपनी क्रिया अर्थात् कर्त्तव्य से छूटा हुआ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भले लोगों में निन्दा का पात्र बनता है।

ओंकरपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणे मुखम्।।
2. 81.

–ओम् से आरम्भ होने वाली, तीन महाव्याहृतियोंवाली और तीन पादवाली गायत्री को वेद का मुख जानाना चाहिए।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ।। 2. 82.

–जो मनुष्य बिना आलस्य के तीन वर्ष निरंतर गायत्री का जप करता है, वह मरने के पश्चात् पवन–रूप और पवित्र और आकाश–रूप पवित्र होकर परब्रह्म

Thearyasamaj.org

को प्राप्त कर लेता है।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामा: परं तप:।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते।।
2. 83.

–एक ओम् अक्षर ही (परब्रह्म) प्रभु–प्राप्ति का बड़ा साधन है। प्राणायाम सबसे बड़ा तप है। गायत्री से बढकर कुछ नहीं है। सत्य मौन से बढ़कर है।

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोति यजतिक्रिया:।
अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापति।। 2. 84.

–वेदानुकूल यज्ञ, इष्टियाँ आदि नित्य नहीं, नित्य रहनेवाला कठिनता से जानने योग्य प्रजापति ब्रह्म है; अर्थात् यज्ञादि वैदिक क्रियाओं का फल तो सांसारिक होने से नाशवान् है, गायत्री–ब्रह्म–ज्ञान तो नाशवान् नहीं, ब्रह्मज्ञान नि:श्रेयस् है और यज्ञ अभ्युदय।

विधियज्ञाज् जययज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणै:।
उपांशु: स्याच्छतगुण: सहस्रो मानस: स्मृत:।।
2. 85.

–यज्ञों से (गायत्री) जप दस गुण अच्छा है। उपांशु–बिना शब्द निकाले धीरे–धीरे जप करना सौ गुणा और मन में जप करना हज़ार गुणा अच्छा है।

मनु भगवान् ने इसके आगे यह बतलाया है कि जितने प्रकार के यज्ञ हैं, वे सारे–के–सारे यज्ञ गायत्री जप के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं। परंतु यह जप भी तभी सफल होता है, जब गायत्री का साधक अपनी ग्यारह इन्द्रियों को वश कर ले। दूसरे अध्याय के 88 वे श्लोक से लेकर 103 श्लोक तक इन्द्रियों ही के दमन का वर्णन कर फिर मनु भगवान् कहते हैं–

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थित:।
सावित्रीमप्यंधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहित ।।
2. 104।।

–वन में एकान्त–देश में जाकर जलाशय के समीप बैठकर, एकाग्रचित होकर नित्यकर्म करता हुआ गायत्री का भी जप करे।

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्र: सुयन्त्रित:।
नायन्त्रितस्त्रिवेदाऽपि सर्वविक्रयी: ।। 2. 118.

–जिस विद्वान ने अपने–आपको वश में कर लिया है, वह केवल गायत्री मन्त्र जाननेवाला ही अच्छा है। और जो नियम में नहीं वश में रहने वाला नहीं, सर्वभक्षी है, सर्वविक्रयी है, वह वेदों का ज्ञाता भी अच्छा नहीं।

'मनुस्मृति' के इसी दूसरे अध्याय में यह बतलाया गया है कि जब यज्ञोपवीत धारण करता है, तभी मनुष्य का इसी शरीर के साथ दूसरा जन्म होता है और उस दूसरे जन्म में माता गायत्री होती है–

तत्र यद् ब्रह्मजन्मास्य मोञ्जीबन्ध्नचिह्नितम्।
तत्रास्य मामा सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते।।
2।। 170।।

–तब जो इसका ब्रह्म–जन्म है, जिसका चिह्न उपनयन है, वहाँ इसकी माता गायत्री और आचार्य पिता कहलाता है।

भगवान् मनु ने गायत्री के सम्बन्ध में स्पष्ट बतला दिया है कि गायत्री–जप ही सबसे बड़ा जप है, जो भारी–से–भारी पाप से मुक्त कर देता है। गायत्री वेद का मुख है, गायत्री वेदों का सार है, गायत्री माता है, गायत्री लौकिक वैभव देनेवाली है।, गायत्री मोक्ष देनेवाली है, गायत्री–जप से रहित निन्दा का पात्र है। मानव को सचमुच मानव बनानेवाली गायत्री ही है। 'मनुस्मृति' के ग्यारहवें अध्याय में भी गायत्री–जप की महिमा गायन की है। इस 11वें अध्यााय में यह प्रसंग है कि कौन–सा पाप कौन से प्रायश्चित से दूर हो सकता है; वही सारे व्रतों, सारे प्रायश्यितों में गायत्री–जप का विधान है। भगवान् मनु आदेश देते हैं–

मनु भगवान् ने इसके आगे यह बतलाया है कि जितने प्रकार के यज्ञ हैं, वे सारे–के–सारे यज्ञ गायत्री जप के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं। परंतु यह जप भी तभी सफल होता है, जब गायत्री का साधक अपनी ग्यारह इन्द्रियों को वश कर ले। दूसरे अध्याय के 88 वे श्लोक से लेकर 103 श्लोक तक इन्द्रियों ही के दमन का वर्णन कर फिर मनु भगवान् कहते हैं–

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तित:।
सर्वेष्वेद व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृत:।। 11. 225.

महादेव शिव गायत्री–जप करते थे–

गायत्री–जप का महत्त्व और भी अधिक प्रकट हो जाता है, जब हम 'गायत्री–मंजरी' में महादेव शिव और पार्वती जी का एक संवाद पढ़ते हैं। इस संवाद का कुछ विवरण यहाँ दिया जाता है

(शिव महादेव भक्तों के लिए यह प्रसंग उद्धृत किया गया है)

– एक बार कैलास पर्वत पर विराजमान महादेव शिव से पार्वती जी ने प्रश्न किया कि हे योगेश्वर! आप किस योग द्वारा इतनी सिद्धियाँ प्राप्त कर पाए हैं? वह कौन–से योग की उपासना है, जिसने आपको सिद्ध बना दिया है?

–इस प्रश्न के उत्तर में महादेव जी ने कहा–

गायत्री वेदमातास्ति साऽऽद्या शक्तिर्मता भुवि।
जगतां जननी चैव तामुपासेऽहमेव हि ।।

–गायत्री वेदमाता है, पृथिवी पर वह आद्या शक्ति कहलाती है। वही संसार की माता है। मैं उसी की उपासना करता हूँ।

यौगिकानां समस्तानां साधनां तु हे प्रिये!
जगतां जननी चैव तामुपासेऽहमेव हि।।

–हे प्रिये ! विद्वानों ने समस्त यौगिक साधनाओं की मूलाधार गायत्री ही को माना है।

भूलोकस्यास्य गायत्री कामधेनुर्मता बुधै:।
लोक आश्रयणेनमुं सर्वमेधाधिगच्छति।।

–विद्वानों ने गायत्री को भू–लोक की कामधेनु माना है। संसार इसका आश्रय लेकर सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

कलौ युगे मनुष्याणां शरीराणीति पार्वती।
पृथिवीतत्त्वप्रधानानि जानास्येव भवन्ति हि।।

– हे पार्वती! कलियुग में मनुष्यों के शरीर पृथिवी–तत्त्व–प्रधान होते हैं

सूक्ष्मतत्त्वप्रधानान्युद्योगोद्भू नृणामत:।
सिद्धीनां तपसामेते न भवन्त्यधिकारिण:।।

–इसलिए अन्य युगों में उत्पन्न हुए सूक्ष्म–तत्त्व–प्रधान मनुष्यों की सिद्धि और तप के ये अधिकारी नहीं होते।

पञ्चांगयोगसंसिद्ध्या गायत्र्यास्त, तथापि ते।
तद्युगानां सर्वश्रेष्ठां सिद्धिं सम्प्राप्नुवन्ति हि।।

– फिर भी वे गायत्री–पंचांग की सिद्धि द्वारा उन युगों की सर्व–श्रेष्ठ सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

गायत्र्येव तपो योग: साधनं ध्यानमुच्यते।
सिद्धीनांसा मता नात: किञ्चिद् बृहतरम्।।

–गायत्री तप है, योग है, साधन है और यही सिद्धियों की माता मानी गई है। इस गायत्री से बढ़कर अन्य कोई दूसरी वस्तु नहीं।

महर्षि दयानन्द और गायत्री–

महर्षि दयानन्द जी महाराज के जीवन में कितनी ही घटनाएँ ऐसी आती हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि वे भी गायत्री उपासना में लगे रहते थे और दूसरों को भी गायत्री–जप की प्रेरणा करते थे। बहुत काल तक वे ऐसा भी करते रहे कि अपने हाथ से गायत्री–मंत्र लिखकर भक्त को देते, और उन पर 1000 अथवा 500 लिखकर आदेश करते कि इतनी बार इसका जप किया करो।

महर्षि ने पूना में जो व्याख्यान जुलाई 1875 में दिये थे और जो 'उपदेश–मंजरी' नाम की पुस्तक में छप चुके हैं, उनमें से 14वाँ भाषण 'नित्य–कर्म और मुक्ति' विषय पर था। उसमें महर्षि ने गायत्री–मंत्र को महामन्त्र बतलाया–

महर्षि ने पूना में जो व्याख्यान जुलाई 1875 में दिये थे और जो 'उपदेश–मंजरी' नाम की पुस्तक में छप चुके हैं, उनमें से 14वाँ भाषण **'नित्य–कर्म और मुक्ति'** विषय पर था। उसमें महर्षि ने गायत्री–मंत्र को महामन्त्र बतलाया और कहा–

''गायत्री–महामन्त्र के अर्थ पर विचार करना चहिए। इस मंत्र द्वारा सारे विश्व को उत्पन्न करने वाले परमात्मा का जो उत्तम तेज है, उसका ध्यान करने से बुद्धि की मलिनता दूर हो जाती है और धर्माचरण में श्रद्धा और योग्यता उत्पन्न होती है। दूसरे किसी मत में प्रार्थना के मन्त्रों की ऐसी गहराई और सच्चाई नहीं हैं।

'पंचमहायज्ञविधि' में गायत्री–मंत्र को गुरुमंत्र लिखते हुए और यह बतलाते हुए कि गायत्री मंत्र तीनों वेदों में विद्यमान है– इस गायत्री मंत्र को सर्वोत्कृष्ट मंत्र लिखा है।

ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' ग्रंथ के **'प्रामाण्याप्रामाण्य विषय'** में गयादि तीर्थों की कथाओं का रहस्य खोलते हुए महर्षि 'शतपथ' का उद्धरण देते हुए लिखते हैं–

प्राणो वै बलं, तत्प्राणे प्रतिष्ठितं, तस्मादाहुर्बल ँ सत्यादोजीय:।
इत्येवम्वैषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता। सा हैषा गयांस्तत्रे।
प्राणा वै गयास्ततप्राणांस्तत्रे। तद्यद्गयांस्तत्रे गायत्रीनाम्।।

इन वचनों का अभिप्राय है– अत्यन्त श्रद्धा से गया–संज्ञक प्राण आदि में परमेश्वर की उपासना करने से जीवन की मुक्ति हो जाती है। प्राण में बल और सत्य प्रतिष्ठित है, क्योंकि परमेश्वर प्राण का भी प्राण है, और उसका प्रतिपादन करनेवाला गायत्री–मंत्र है, जिसको गया कहते हैं। इसलिए कि उसका अर्थ जानकार श्रद्धा सहित परमेश्वर की भक्ति करने से जीव सब दु:खों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। तथा प्राण का भी नाम 'गया' है; उसको प्राणायाम की रीति से रोककर परमेश्वर की भक्ति के प्रताप से पितर अर्थात् ज्ञानी लोग सब दु:खों से रहित होकर मुक्त हो जाते हैं। क्योंकि परमेश्वर प्राणों की रक्षा करनेवाला है, इसलिए ईश्वर का नाम गायत्री और गायत्री का नाम ईश्वर है।

कितने सुन्दर शब्दों में भगवान दयानन्द ने गायत्री–मंत्र द्वारा परमात्मा की उपासना से सब दु:खों से छूटकर मुक्ति प्राप्त करने का आदेश दिया है! महर्षि अपने व्याख्यानों में तो गायत्री–जप की प्रेरणा करते ही थे, उन्होंने अपने अमर गंथ **'सत्यार्थप्रकाश'** में भी गायत्री–जप की आज्ञा दी है; तृतीय समुल्लास में महाराज लिखते हैं–

"जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान होके, जल के समीप स्थित होकर, नित्य–कर्म करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री–मंत्र का उच्चारण, अर्थ–ज्ञान और उसके अनुसार अपने चालचलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। ...... न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही सन्ध्योपासना भी किया करे।"

शेष अगले अंक में....

Thearyasamaj.org

धर्म के प्रति आस्था के नाम पर बढ़ता अन्धविश्वास

● पण्डित वेदप्रकाश शास्त्री

धर्म का नाम बहुत बड़ा है। धर्म का अर्थ अत्यन्त विस्तत है। धर्म के प्रति बहुसंख्य लोगों की आस्था है। परन्तु धर्म क्या है? यह जानने का प्रयत्न कितने लोग करते हैं ? सम्भवत बहुत कम लोग ऐसे हैं। धर्म के नाम पर आज अनेक सन्त, महन्त, साधु, महात्मा अपने–अपने आश्रम चला रहे हैं। आलम यह है कि सभी आश्रम सब प्रकार की भौतिक सुविधाओं से परिपूर्ण हैं जिनका वे उपयोग कर रहे हैं। करोड़ों की सम्पत्ति है, जमीन–जायदाद है। परन्तु शिष्यों को उपदेश करते हैं"– "संसार कुछ नहीं मिथ्या है, कुछ साथ नहीं जाएगा, सब यहीं रह जाएगा। क्या लेकर आए हो, क्या लेकर जाओगे? कुछ भी तो नहीं। गुरु–चरणों में सर्वस्व–समर्पण ही मुक्ति का मार्ग है। मुक्ति मिल गई तो भला और क्या चाहिए? गुरु ही तारने वाला है। गुरु से बड़ा कोई नहीं। गुरु ईश्वर से भी बड़ा है

हरि रुठे गुरु ठौर है, गुरु रुठे नहिं ठौर।।

गुरु की शरण में आ गए। बस, बेड़ा पार। शिष्य भी सोचता है इससे सस्ता, सरल, परिश्रम रहित उपाय भला और कहां मिलेगा? 'हर्रा लगे न फिरकारी, रंग चोखा'। इन्हीं चिकनी, चुपड़ी अन्धविश्वास बातों में उलझ जाते हैं। यह विचार नहीं करते की गुरु का उपदेश कैसा है? उसमें कुछ तथ्य है भी अथवा केवल ऊपरी दिखावा, आडम्बर और पाखण्ड है, चमत्कार–पूर्ण बाते हैं। वस्तुतः 'सत्यवचन महाराज' कहने के अतिरिक्त उनका भी कोई वश नहीं चलता। तर्क–वितर्क का कोई स्थान नहीं। जब व्यक्ति अन्धपरम्परा का अनुसरण करने लगता है तो वही भेड़चाल हो जाती है। गुरु, सन्त, महात्मा की बात पर आंखें बन्द कर विश्वास करना ही अन्धविश्वास है। यही सबसे बड़ा धर्म है। जब गुरु ने अन्धश्रद्धा से परिपूर्ण उपदेश को धर्म बना दिया तो फिर उस पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता। गुरुवाक्य ही ब्रह्मवाक्य है। 'गुरुवाक्यम् प्रमाणम्' ननुनच को कोई स्थान नहीं।

वर्तमान समय में अनेक आश्रम हैं, अनेक सन्त हैं अनेक धर्म हैं। ऊपर से तुर्रा यह कि सभी सन्तों के धर्म श्रेष्ठ हैं। परन्तु एक बात विचारणीय है कि इन धर्मो की गहराई में जाने का प्रयत्न कोई भी नहीं करता। बस, गुरुओं के प्रति आस्था है। भला इससे बढ़कर और क्या हो सकता है। एक बार जो इसमें डूबा तो डूबता ही चला गया। जब आस्था अन्धविश्वास में परिवर्तित हो जाती है तो सोचने समझने की बुद्धि का ह्रास होने लगता है। यहां तक कि उस पर ताला लग जाता है।

अनेक लोग कहते हैं–हमारी अमुक धर्म, सन्त अथवा गुरु के प्रति आस्था है। यदि कोई उस पर टीका–टिप्पणी कर दे, किसी प्रकार की जिज्ञासा प्रकट करे अथवा वैज्ञानिक सोच के अनुसार कोई बात कहे कि यह कैसे हो गया? तो वाद को विवाद बना देते हैं, लड़ने मरने को तैयार हो जाते हैं। यह विचारने का कष्ट नहीं करते कि सम्मुख स्थित व्यक्ति जो कुछ कह रहा है, उसमें कितनी सच्चाई है? उसका कथन धर्म और विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है या नहीं? वस्तुतः उत्तर शालीनतापूर्ण होना चाहिए। एकदम से आवेश में आने में कोई औचित्य नहीं। पर यह कौन सोचता है?

पहले धर्मचर्चा हुआ करती थी बड़े–बड़े विद्वान्, पण्डित, शास्त्रज्ञ एकत्र होते थे। वेद शास्त्र और सिद्धान्तों पर चर्चा होती थी, शास्त्रार्थ होते थे। अपना–अपना पक्ष रखते थे। महाराजा जनक की सभा इसके लिए प्रसिद्ध है। गार्गी भी शास्त्रार्थ में पीछे न थी। कालिदास की पत्नी विद्योतमा अत्यन्त विदुषी थी। स्वयं को महान् विद्वान और शास्त्रज्ञ समझने वालों को धूल चटा दी थी। इसी ईर्ष्या–दोष के कारण पण्डितों ने उसका विवाह महामूर्ख जानकर कालिदास से करा दिया था जो बाद में बहुत बड़े विद्वान बन गए।

स्वामी शकंराचार्य ने अनेक जैन, बौद्ध पण्डितों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया था। वर्तमान काल में महर्षि दयानन्द ने पौराणिक, जैन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई एवं समकालीन अन्य अनेक मतावलम्बियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया था। मुस्लिम विश्वविद्यालय के संस्थापक सर सैय्यद अहमद खां महर्षि दयानन्द के प्रति अत्यन्त सौहार्दपूर्ण भावना रखते थे। दोनों का समय समय पर विचार विमर्श होता रहता था। पादरी स्काट को महर्षि 'भक्त स्काट कहा करते थे। वह प्रतिदिन सत्संग में आते थे। एक दिन जब वह नहीं आए तो महर्षि ने पूछा– आज भक्त स्काट कहां हैं?

किसी ने उतर दिया– आज रविवार है, वह गिरजाघर में सत्संग कर रहे होंगे। दयानन्द ने कहा– 'अच्छा, चलो आज उनके गिरजाघर चलते हैं।'

व्याख्यान दे रहे भक्त स्काट ने महर्षि को देख लिया। तुरन्त मंच से नीचे आए और उन्हें सम्मान सहित मंच पर ले गए। उनका व्याख्यान करवाया।

परन्तु आज धर्मचर्चा नहीं रही। शाास्त्रार्थ समाप्त हो गए। इसका स्थान ले लिया शस्त्रार्थ (?) ने। शिष्यों ने शाास्त्र के स्थान शस्त्र उठा लिए। अनेक आश्रमों में शस्त्रों का भंड़ार मिल जाएगा। परन्तु शास्त्रों के दर्शन कहीं भी नहीं होगें। कहीं भी वेद, दर्शन, उपनिषद्, रामायण, गीता आदि ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होंगे। यदि कहीं हुए भी तो अलमारियों में बंद। बस, एक गुरु जी का ग्रन्थ चौकी पर अवश्य मिल जाएगा। उसी का पाठ कर लेना पर्याप्त है। गुरु का उपदेश सुन लेना ही कल्याणकारी है, मुक्ति दाता है। फिर भला त्याग, तपस्या, भक्ति, सदाचरण परोपकार आदि गुणों की क्या आवश्यकता है?

परन्तु आज धर्मचर्चा नहीं रही। शाास्त्रार्थ समाप्त हो गए। इसका स्थान ले लिया शस्त्रार्थ (?) ने। शिष्यों ने शाास्त्र के स्थान शस्त्र उठा लिए। अनेक आश्रमों में शस्त्रों का भंड़ार मिल जाएगा। परन्तु शास्त्रों के दर्शन कहीं भी नहीं होगें। कहीं भी वेद, दर्शन, उपनिषद्, रामायण, गीता आदि ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होंगे। यदि कहीं हुए भी तो अलमारियों में बंद। बस, एक गुरु जी का ग्रन्थ चौकी पर अवश्य मिल जाएगा। उसी का पाठ कर लेना पर्याप्त है। गुरु का उपदेश सुन लेना ही कल्याणकारी है, मुक्ति दाता है। फिर भला त्याग, तपस्या, भक्ति, सदाचरण परोपकार आदि गुणों की क्या आवश्यकता है?

कई आश्रमों में तो आपतिजनक स्थिति में पुलिस को प्रवेश करने में ही नाकों चने चबाने पड़ते हैं। आश्रम के सैनिकों को ताकते रह जाते हैं। मुकाबला करना कठिन हो जाता है। ऐसी किलेबन्दी होती है कि सेना के जवान भी दांतो तले उंगली दबाने को विवश हो जायें। शास्त्र के स्थान पर शस्त्र ही प्रमुख हो गए। यह चिन्ता का विषय है। आखिर पहले इसी का चिन्तन करें। शास्त्रों का चिन्तन बाद का विषय है। शस्त्रो के सम्मुख शास्त्र भी नि–सहाय हो जाते हैं। इनके लिए **'अहिंसा परमो धर्मः'** का सिद्धान्त कुछ भी मूल्य नहीं रखता। **'आचारः परमोः'** धर्म भी नहीं रहा।

अनेक सन्तों की पोल खुल चुकी है। सभी उनके बारे में जानते हैं। जिनकी नहीं खुली वही श्रेष्ठ हैं। क्या ही अच्छा हो इनकी भी जाँच की जाए।

ऐसा नहीं कि सभी सन्त, महात्मा, गुरुजन सन्दिग्ध हैं। अपवाद अवश्य ही विद्यमान रहता है। सचमुच के गुरुजन अपना ढ़ोल नहीं पीटते, सम्पति के पीछे नहीं भागते, आश्रमों के बनाने, संवारने में ही अपना समय नहीं गंवाते, ऐसे त्यागी, तपस्वी, साधु, सन्त, गुरुजन हमारे पूजनीय हैं।

वास्तविक धर्म क्या है? वेद कहता है– 'मनुर्भव'। अर्थात् मनुष्य बनो। मनुष्यता के गुणों को धारण करो।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।

समस्त धर्म का निचोड़ सुनो और सुनकर धारणा करो। अपनी आत्मा के प्रतिकूल दूसरों के साथ आचरण मत करो अर्थात जैसा अपने प्रति अच्छा व्यवहार चाहते हो, वैसा ही दूसरो के साथ अच्छा व्यवहार करो। यही धर्म है।

आदमी आदमी जो बन जाए।
दुख सारे जहां का मिट जाए।।

एक अन्य विद्वान के अनुसार –

फरिश्ते से बेहतर है इंसा होना।
पर इसमें पड़ती है मेहनत ज्यादा।।

आइए, हम सभी धर्म के यथार्थ स्वरुप को ग्रहण करें। आस्था के नाम पर अन्धविश्वास में न फंसें। यही हमारा परम कतर्व्य है, धर्म है।

4–E, कैलाशनगर,
फाजिल्का, पंजाब
मो. 9463428299

भूल सुधार

आर्य जगत् के 22वें अंक 31 मई से 06 जून 2015 के पृष्ठ 7 पर मुद्रित लेख 'भारत का महान गणितज्ञ' के प्रथम कालम की 13वीं पंक्ति में प्रूफ की गलती से कपूत शब्द गलत छप गया है। पाठक इसे सपूत पढ़ें। अशुद्धि के लिए खेद है।

सम्पादक

Thearyasamaj.org

उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

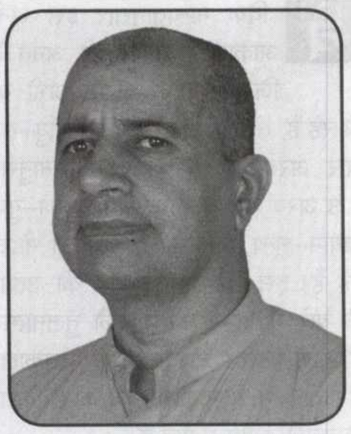

शंका– बेटा अपने पिता पर न्यायपूर्वक क्रोध करता है, वह हिंसा या अंहिसा है?

समाधान– अगर न्यायपूर्वक कोई बात कहनी है, तो क्रोध में नहीं कहें। **क्रोध में कोई बात कहना तो हिंसा है। वही बात प्रेम से भी की जा सकती है।** पिताजी को प्रेम से कहें, कि आपकी यह बात ठीक नहीं है। हम यह नहीं करेंगे। हम इसे नहीं स्वीकारेंगे।

इसी तरह नौकर को अपने मालिक पर क्रोध करने का अधिकार नहीं। नौकर को अगर मालिक की बात गलत लगती है, तो वह प्रेम से बोल दे, कि यह काम ठीक नहीं है। मैं नहीं करूँगा। मालिक नौकर को नौकरी से निकाल सकता है। अगर इतनी हिम्मत है, तो कह सकते हैं, कि मैं नौकरी नहीं करूँगा।

शंका– योगदर्शन में 'अहिंसा' का क्या अर्थ है?

समाधान– किसी से भी **वैर–भाव नहीं रखना,** द्वेष नहीं करना, बिना किसी अपराध के, कठोर भाषा नहीं बोलना, किसी पर अत्याचार नहीं करना, अन्याय नहीं करना, अंहिसा का यह मतलब है।

शंका– पाकिस्तानी हमारे जवानों को बार–बार धोखे से मारते हैं, क्या हमें उनको नहीं मारना चाहिए? मारना हिंसा है, तो क्या करें?

समाधान– पाकिस्तानी लोग हमारे जवानों को मारते हैं तो हमारे जवान भी उनको मारेंगे, वे चुपचाप क्यों बैठेंगे? ईंट का जवाब पत्थर से देंगे। सेना विभाग क्षत्रियों का है। कोई विदेशी शत्रु हमारे घर में घुसेगा, तो क्षत्रिय उनको नहीं घुसने देंगे, उसको दण्ड देंगे।

पाकिस्तानी हमारे देश में घुसता है, तो क्या यह न्याय है या अन्याय? अन्याय है न। **अन्याय का विरोध करना, यह न्याय है।** वो हमारे देश में क्यों घुसता है? आप अपने घर में रहो, हम अपने घर में रहेंगे। आप जबरदस्ती हमारे घर में घुसेंगे, तो हम उसका प्रतिकार करेंगे। यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यह हमारी मातृ–भूमि है। इसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है, हमारा धर्म है। कोई भी विदेशी शत्रु हमारे घर में घुसेगा, हम उसका दिमाग ठीक कर देंगे। हम उसको पीट–पीटकर कर बाहर निकाल देंगे। और ज्यादा गड़बड़ करेगा, तो पूरा ही मार डालेंगे। इसका नाम हिंसा नहीं है। इसका नाम अहिंसा है। **हिंसा के विरुद्ध व्यवहार अहिंसा है।**

वह अन्यायपूर्वक हमारे देश में घुसता है। इसलिए हिंसा तो उसने की, हमने थोड़े की। हमने तो उस हिंसा का विरोध किया, तो वह अंहिसा हुई।

यह काम क्षत्रिय विभाग को दे देंगे, वो अपना काम करता रहेगा। हम अपने योगाभ्यास में, अपने क्षेत्र में काम करेंगे। इस तरह से इसका उत्तर समझना चाहिये।

शंका– कृषि करने के दौरान केंचुआ आदि छोटे जीवों ण्की मृत्यु हो जाती है। फिर हम हिंसावादी हुए कि नहीं?

समाधान–

● कृषि करने से लाभ भी होता है, बहुत सा पुण्य भी मिलता है। खाने को बहुत सा अन्न मिलता है, बहुत से प्राणियों की रक्षा होती है। कृषि करने से कुछ प्राणी मर भी जाते हैं, इससे हिंसा भी होती है।

● **इस प्रकार कृषि से कुछ पुण्य होता है और कुछ पाप होता है। इसलिए कृषि को मिश्रित–कर्म कहा जाता है।**

● अगर आप मिश्रित कर्म के फल से बचना चाहते हैं, तो खेती छोड़ दें। दूसरा खेती करेगा, जिसको करनी हो। हर व्यक्ति एक ही काम करे, यह आवश्यक नहीं है। अपनी रुचि के अनुसार वह अपना व्यवसाय चुन ले। जिसकी जैसी रुचि होगी, वह वैसा काम करेगा। योग्यता भी हो, और रुचि भी हो, तभी काम को करना चाहिए।

शंका– रोग दूर करने के लिए और स्वच्छता के लिए आज कीटनाशक दवाओं का इस्तेमाल अनिवार्य हो गया है, क्या ऐसा करना भी हिंसा करना होगा?

समाधान– आप अपनी जीवन रक्षा के लिये कीड़े–मकोड़े आदि प्राणियों को मारते हैं। दरअसल, वह हिंसा तो है ही। उसका थोड़ा बहुत दोष भी लगेगा। यह अलग बात है कि आप खेती करते हैं, बहुत सा अनाज उत्पन्न करते हैं, उससे बहुत से प्राणियों की रक्षा करते हैं, उससे पुण्य भी मिलेगा। पर जितना–जितना प्राणियों को दुःख देते हैं, उतना–उतना हिंसा भी मानी जायेगी।

दर्शनयोग महाविद्यालय
रोजड़वन, गुजरात

आर्यसमाज में उच्चतर शोध की स्थिति सन्तोषप्रद नहीं

● डा. भवानीलाल भारतीय

अध्ययन के पश्चात् शोधकार्य का स्थान है। ऋषि दयानन्द ने अध्ययन किया और यथा आवश्यकता शोध के क्षेत्र में भी पद निक्षेप किया जिसका विवरण पृथक् से देना होगा। आर्यसमाज में शोधकार्य व्यक्ति निष्ठ रहा तथा संस्थागत भी होगा रहा।

आर्य प्रादेशिक सभा ने महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग की स्थापना की और बहुविध शोधग्रन्थ प्रकाशित किये। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने पं. चमूपति साहित्य विभाग की स्थापना की और अनेक उच्चस्तर के शोधग्रन्थ प्रकाशित किये। इधर उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय सभा ने पं. घासीराम के नाम पर साहित्य विभाग कायम किया और वेद तथा इतर विषयों पर उच्च कोटि के शोधग्रन्थ प्रकाशित किये। अन्य सभाओं ने यथामति इस क्षेत्र में काम किया। राजस्थान के दी. ब. हरविलास शारदा ने वहां की सभा के अतिरिक्त परोपकारिणी सभा के सहयोग से ऋ. द. विषयक अनेक अंग्रेजी ग्रन्थ लिखे जिन्हें उक्त सभा ने प्रकाशित भी किया।

कालान्तर में टंकारा, मथुरा, दिल्ली, अजमेर आदि स्थानों पर शोधकार्य का आरम्भ किया गया। टंकारा ऋषि का जन्म स्थान था तो मथुरा अध्ययन स्थान। ऋषि की दीक्षा शताब्दी (1959) वर्ष में उनके अध्ययन स्थल पर शोध कार्य आरम्भ किया जाना विशेष समारम्भ से हुआ। तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने इस शोध संस्थान की आधारशिला रखी। इस शोधकार्य के लिए मुम्बई कोट्याधीश प्रताप भाई वल्लभदास ने बड़ी राशि की घोषणा की थी। शोध समिति में पं. हरिशंकर की तथा पं. नरेन्द्र एवं पं. प्रकाशवीर जैसे वरेण्य व्यक्तियों को स्थान दिया गया था। तथापि वह कार्य रत्ती भर भी आगे नहीं बढ़ा और दण्डी जी की वह विद्याशाला शोधकार्य तो दूर रहा, सफाई कर्मचारी की प्रतीक्षा में है। दिल्ली में जब पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति सार्वदेशिक सभा के मंत्री थे, मुझे स्मरण आ रहा है कि एक शोध प्रकल्प का आरम्भ किया गया था, किन्तु वह भी एक दो शोध के अंक निकाल कर समाप्त हो गया। उसके पश्चात् एक युग बीत गया लाला रामगोपाल जी के नेतृत्व काल में पं. वैद्यनाथ शास्त्री को वैदिक अनुसंधान विभाग का अधिष्ठा बनाकर उपयुक्त वेतन पर कार्य दिया गया। किन्तु विडम्बना देखिए– बकौल खुद उनके, मुझसे मुक्कदमों की फाइलें पढ़वाई जातीं और मेरा काम था सम्पत्ति सम्बन्धी मामलों में सभा के वकील की सहायता करना। तथापि शास्त्री जी ने यथा तथा दो तीन उत्तम शोधग्रन्थ हमें दिये।

इस प्रकार के अनेक प्रयास कुटकर तौर पर होते रहे। टंकारा ट्रस्ट के तत्कालीन अध्यक्ष न्याय मूर्ति मेहरचंद महाजन ने मंत्री पं. आनन्दप्रिय के परामर्श से शोध केन्द्र टंकारा में बनाया। इस पर पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी को उपयुक्त पारिश्रमिक (वेतन) देकर रखा गया। टंकारा मासिक पत्रिका शोध के लिए निकाली गई किन्तु मीमांसक जी के स्वास्थ्य के अनुकूल टंकारा का वायु मण्डल नहीं था अतः 1–2 वर्ष तक कुछ महत्वपूर्ण लेखन कार्य कर उक्त पण्डित जी भी रामलाल कपूर ट्रस्ट में लौट आये।

लाहौर के एक व्यवसायी, कागज़ के व्यापारी, रामलाल कपूर के वारिसों ने अपने गुरु पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के परामर्श से रामलाल कपूर ट्रस्ट की स्थापना की। देश विभाजन, के बाद से अमृतसर, पुनः वाराणसी, तत्–पश्चात् सोनीपत इसे संचालित किया जाता रहा। इस ट्रस्ट ने प्रथम पं. जिज्ञासु तथा उनके बाद पं. युधिष्टिर मीमांसक एवं स्वामी विद्यानन्द (पं. लक्ष्मीदत्त दीक्षित) के मार्गदर्शन में शोध तथा प्रकाशन का श्रेष्ठ कार्य किया। इधर अजमेर में परोपकारिणी सभा ने कुछ वर्ष पूर्व करोड़ों रुपये व्यय कर ऋषि उद्यान में विशाल, बहुमंजिला भवन तो खड़ा कर लिया परन्तु रिसर्च के नाम पर शून्य है। केवल ऋषि मेले के समय चार दिनों के लिए यह भवन काम में आ जाता, अन्यथा शोध के नाम पर यह

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

Thearyasamaj.org

कैसे बने ब्रह्मांड और वेद

● आर्य प्रहलाद गिरि

वैदिक मान्यतानुसार इस अनंत आकाश में ब्रह्मांड भी अनंत हैं। जिसमें अनेक ब्रह्मांड अभी बन ही रहे हैं, तो कहीं कोई अपनी पूर्णायु–साढ़े चार अरब वर्ष (आधुनिक विज्ञानानुसार 13 अरब वर्ष) बिता कर अपने कृष्ण–गुफा (श्याम–शून्य, ब्लैक होल) में मिटते भी जा रहे हैं। इस तरह हम ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बारे में अन्य धर्मग्रंथों को तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ते हैं तो दुनिया के पुस्तकालय में प्राचीनतम 'विश्वकोश'–वेद को ही विज्ञान के काफी करीब में पाते हैं।

सौ–डेढ सौ वर्ष पूर्व तक प्रो. सोलस, कीथ, शिंपर, हेकल और डॉ. चर्च जैसे वैज्ञानिक मानवोत्पत्ति को अधिकतम आठ लाख वर्ष बता रहे थे, तब भी यजु (31.19) और ऋग् (10.62.7) के आधार पर हम हिरण्यगर्भ नामक इस ब्रह्मांड की वर्तमान उम्र एक अरब, छियानवे करोड़, आठ लाख, तिरेपन हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष गिन–गिन कर बताते आ रहे हैं। यानि इस ब्रह्मांड की आधी आयु बीत गयी है।

अब जरा ब्रह्मांड की रूप–रेखा को भी झाँक लें। किसी भी ब्रह्मांड के अंदर अनेकों मंदाकिनी–पुंज होते हैं। किंतु अपने ब्रह्मांड में मात्र 24 मंदाकिनी–पुंज हैं। अपने मंदाकिनी–पुंज का नाम–मेघलीन है, अपने ब्लैक होल से यह 50 लाख वर्ष की दूरी पर है। 95 खरब कि.मी. का एक प्रकाश वर्ष होता है। हमारे मेघलीन में अपनी मंदाकिनी का नाम है– आकाश गंगा। इसके 30 खरब तारों (सूर्यों) में अपने सूर्य का नाम है– अरुण। इस अरुण सूर्य के 9 ग्रहों में एक है हमारी पृथ्वी। ये बुध लोक और शुक्र लोक के बाद सूर्य से 15 करोड़ कि.मी. दूर है। इसे मृत्युलोक इसलिए भी कहा जाता है कि जिंदगी भी यहीं है, क्योंकि सूर्य से इतनी ही दूरी के तापमान में प्राणियों का सभ्य–जीवन संभव है। अपने अंडाकार भ्रमण–पथ पर यह धरती प्रतिघंटा एक लाख कि.मी. की गति से 350 दिनों (आधुनिक मतानुसार 365 दिनों) में 96 करोड़ कि.मी. की परिक्रमा पूरी कर लेती है। अपने पिता सूर्य की एक बार परिक्रमा कर लेने की इस अवधि को ही पृथ्वी का एक वर्ष कहते हैं। ज्ञात हो कि शुक्र ग्रह पर हमारे 225 दिनों के बराबर ही वहाँ का एक दिन और एक वर्ष एक ही साथ पूरा होता है। सूर्योदय भी वहाँ पश्चिम से होता है। ऐसी अनेक विचित्रताओं से भरे हमारे सौर मंडल के स्वामी सूर्यदेव अपने अन्य मित्रों (सूर्यों) के साथ अपनी निश्चित परिधि में प्रति सेकेंड 250 कि.मी. की गति से, 32 हजार प्रकाशवर्ष दूरस्थ अपने मंदाकिनी–केन्द्र की परिक्रमा 25 करोड़ वर्ष में पूरा करते हैं। यही अवधि सूर्य का एक वर्ष या ब्रह्मांड–वर्ष भी कहलाती है।

ऐसे अनंत और विराट् ब्रह्मांडों की विचित्र किन्तु अनुशासित–सुव्यवस्थित रचना करने वाला निश्चित ही बेहद बुद्धिमान और अत्यंत शक्तिशाली कोई एक निराकार (गुप्त–संचालक) अजर, अमर, अखंड, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी तत्त्व होगा, उसे ही हम परम ईश्वर, परमात्मा कहते हैं। वही ईश्वर स्वाभाविक नियमानुसार परमाणुओं में बिखरे सारे प्राकृतिक–तत्त्वों को मिला–मिला कर हवा, अग्नि, जल, मिट्टी आदि से दृश्यमान जगत् को सजाते सँवारते रहता है।

सृष्टि के आरंभ में सक्रिय हो चुके परमाणुओं के घर्षण से जो प्रकाश और ओम् ध्वनि निकलती है, उसे ही हम अपने सृजेता का सर्वोच्च नाम और स्वरूप मानकर नित्य ध्यानोपासना करते हैं।

तप्त सूर्य के छिटककर 24 घंटे में एक बार अपनी परिधि में घूमती हुई पृथ्वी दिन–रात तथा वर्ष भर में एक बार उत्तरायण और दक्षिणायन की संतुलित ठंढी और गर्मी पा–पाकर ही आज भी मुस्कुराती रहती है। सूर्य का प्रकाश आने में यहाँ 8 मिनट लग जाते हैं, जबकि प्रकाश की गति 3 लाख कि.मी. प्रति सेकेंड है।

हमारी आकर्षक पृथ्वी यदि बाईं ओर से 23 डिग्री झुकी हुई न होती, या 24 घंटे के दिन–रात न होते, या उत्तरायण–दक्षिणायन न होता, या 4 लाख कि.मी. से चाँदनी–बरसाने वाला नन्हा चंदा मामा न होता, या सूर्य की तीखी (पराबैंगनी) किरणों को छानने वाली ओजोन–चादर 50 किमी ऊपर पृथ्वी के वायु मंडल में नहीं होती, तब पृथ्वी पर हमारा जीवन संभव नहीं हो पाता। चेतन–आत्मा, सर्वज्ञ–परमात्मा और जड़–प्रकृति ये तीनों ही अनादि, अमर और शाश्वत (सदा बने रहने वाले) तत्त्व हैं। परमात्मा हर कल्प में प्रकृति से संसार को बनाकर जीव–जगत् को उसके पूर्व जन्मों के गुण–कर्मानुसार रचते रहता है।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्तानुसार तप्त सूर्य से जन्मी धरती जब काफी ठंढी हो गई, यहाँ नदी, पर्वत, वृक्ष, पशु, पंछी आदि चराचर जीव–जगत् फलने–फूलने–चहकने लगे, तब हिमालय (कैलास) के मानसरोवर (मानव+उर्वर) से हजारों की संख्या में नग्न और संत स्वभावी युवा स्त्री–पुरुषों की अमैथुनी उत्पत्ति हुई। जैसे आज भी बरसात के मौसम में घुरघुरा (झींगुर) जैसे युवा कीड़े मुलायम धरती को फोड़कर उत्पन्न होते हैं। इसीलिए वेद में पृथ्वी को मनुष्यों की माँ बताया है– **माता भूमिः, पुत्रोऽहम् पृथिव्याः –**

इस तरह पृथ्वी पर सर्वप्रथम जन्मने वाले हजारों पुण्यात्माओं में भी सर्वाधिक जिज्ञासु–अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक चार ऋषियों में जिज्ञासा उठी कि हम सब कौन हैं? हमें किसने और क्यों बनाया, ये धरती आकाश सूर्य चंद्रादि क्या हैं, जिसने ये सब रचा, वो कैसा है? उसकी प्रसन्नता के लिए हम क्या कर सकते हैं, उससे कैसे मिल सकते हैं?– यही चिंतन–अन्वेषण करते हुए ये चारों ऋषि ध्यानस्थ हो गए। तब उनकी अंतरात्मा में जो शाश्वत ज्ञान की दिव्य वाणी उन्हें मिली, उससे वे खुद भी अचंभित और आह्लादित हो उठे, क्योंकि इस की भाषा और संदेश अत्यंत उत्कृष्ट थे। इसलिए वे इसे ईश्वरीय–ज्ञान मान कर पीढ़ी–दर–पीढ़ी अक्षरशः सबको सुनाते–सीखते–पढ़ाते और कंठस्थ कराते रहे। इसीलिए वेद का एक नाम श्रुति भी है। फिर ब्रह्मा नामक पहले ऋषि हुए जो ऋग्, यजु, साम और अथर्व को अकेले मुखस्थ कर के सबको वेद–विधान बताते रहे। इसीलिए इन्हें वृद्ध पितामह ब्रह्मा की उपाधि देकर चतुरानन भी कहा जाने लगा।

इनके बाद अगस्त–विश्वामित्रादि अनेक वैज्ञानिक–ऋषि एवं ऋषिकाएँ हुईं जिन्होंने वेद के मंत्रों (ऋचाओं) के शोधपूर्ण तात्पर्य–अर्थ बताए, उनके भी नाम उन मंत्रों के साथ जुड़ते गए।

आज से 5 हजार साल पहले पराशर ऋषि के पुत्र कृष्ण द्वैपायन बादरायण जी हुए, जो वेदों का नए ढंग से संपादन कर के 'वेदव्यास' तो कहलाए गए, किन्तु इन्हीं के शिष्य (वैशंपायन जी) के शिष्य क्रांतिकारी ऋषि याज्ञवल्क्य (विदुषी गार्गी और कात्यायनी के पति) को ये अच्छा न लगा और उन्होंने अपने दुराग्रही गुरु की अवज्ञा करके भी शुक्ल यजुर्वेद का संपादन किया, जो गुरुकुलों में काफी लोकप्रिय हुआ।

इसके बाद रावण, सायणादि अनेक वाममार्गी और बौद्धों ने वेदमंत्रों का मांस–मदिरा–मैथुनादि अनैतिक अर्थ कर–कर के समाज में अधर्म फैला दिया। जिसका प्रामाणिकता से खंडन करते हुए क्रांतिकारी ऋषि दयानंद ने आधुनिक युग में वेदों का उद्धार करते हुए बताया कि 'वेदों में कहीं भी पक्षपात या मूर्खता भरी अंधविश्वास की बातें नहीं हैं। ब्रह्मांडों में कहीं पृथ्वी जैसी अन्य सभ्यताएं भी होंगी तो वहाँ भी ईश्वरीय–संदेश के रूप में ऐसा ही वेद होगा, इससे भिन्न नहीं। क्योंकि ईश्वर का शाश्वत संदेश सदा–सर्वत्र एकसा ही होता है। पूर्व में कहीं बातों में वह फेरबदल नहीं करता जैसा कि अन्य धर्मग्रन्थों में पाया जाता है।' यही कारण है कि आज पूरे विश्व में एकमात्र इन्हीं के वेद–भाष्य सर्वाधिक प्रामाणिक माने जा रहे हैं।

ऋग्वेद में 10589, यजुर्वेद में 1975, सामवेद में 1875 और अथर्ववेद में 5977 मंत्र यानि संपूर्ण वेद में कुल 20416 मंत्र हैं। वेदानुसार ब्रह्मांड की ये चहल–पहल साढ़े चार अरब वर्ष तक चलती है और इतने ही समय तक प्रलयकाल का सर्वत्र शून्य अंधेरा बना रहता है। यही एक कल्प ब्रह्मा का एक रात–दिन है। ऐसे 360 कल्पों का ही एक ब्रह्म–वर्ष होता है एवं सौ ब्रह्मवर्षों की एक ब्रह्मायु होती है। कोई मुक्त (मोक्ष) जीवात्मा इतने ही समय (36000 कल्पों) तक मोक्षानंद पाता रहता है। भारतीय ऋषियों ने इस अवधि को महाकल्प, ब्रह्मकल्प एवं परांतकाल भी कहा है।

अभी श्वेत वाराह कल्प के वैवस्वत (सातवाँ) मन्वंतर का 28 वाँ कलियुग का 5115 वाँ वर्ष चल रहा है। कलियुग की अवधि है–432000, इससे दूनी यानी 864000 वर्ष द्वापर की, इससे तिगुना त्रेता का और चौगुना उम्र है सत्य युग का। ये चारों युग (43,20,000 वर्ष) को एक चतुर्युग या महायुग भी कहा गया है। ऐसे 71 महायुग का एक मन्वंतर होता है। हर मन्वंतर बीतते–बीतते सारी धरती जलमग्न हो जाती है।

ऐसे 14 मन्वंतरों का एक कल्प होता है, एक कल्प (एक हजार चतुर्युग) पूरा हो जाने के बाद ये सारी सृष्टि बिखर कर विलीन हो जाती है, तब आत्मा, परमात्मा और प्रकृति तत्त्व को छोड़ कहीं कुछ भी बचा नहीं रहता। धरती, सूर्य, नक्षत्र, चंद्रादि सभी शक्तिहीन–निष्क्रिय होकर मिट गए होते हैं। चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों की इस प्रलयावधि को ही हम परमात्मा की रात (कयामत) कहते हैं। इसमें सारी आत्माएँ और सारे प्रकृति–तत्त्व सुप्तावस्था में निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। इतने लंबे समय तक लगातार विश्राम कर लेने के बाद सारे प्राकृतिक परमाणुओं में पुनः शक्ति का संचार होने लगता है, उसमें पुनः सक्रियता–चंचलता बढ़ने लगती है। तब पुनः उतने ही समय चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों के लिए इस दृश्यमान–जगत ब्रह्मांड की रचना–सृजन वह निराकार सर्वेश्वर अपनी अनंत अंगुलियों से पुनः करने लगता है।

वेदों में इस तरह अनंत ज्ञान की बुद्धिगम्य बातें भरी हुई हैं। फिर भी गुप्तकाल (दूसरी सदी) में गीता के जन्मते ही वेद–पठन उसी तरह लुप्त हो गया जिस तरह बाजार में गाइड के आते ही आलसी छात्र लोग कोर्स की मोटी–मोटी किताबें पढ़ना बंद कर देते हैं। चाहे वह गाइड नकली और गलत ही छपा क्यों न हो। अपने को वेदों–उपनिषदों का सारांश कहने वाली वेद विरोधिनी गीता भी नकली धर्मग्रंथ है। इसके तन्वंगी शरीर और मोहक–मधुर विज्ञापनी शैली के नशे में ही सारे हिंदू फँसते गए हैं।

अब आर्यों को भी चाहिए कि ऋग्, यजुः, साम और अथर्व नामक वेद के चारों खंडों को एक जिल्द (कंफरटेबल, यात्रा संस्करण) में सस्ता, सुंदर, सरल और सुगम पुस्तकाकार में छपवा कर गीता की मृगतृष्णा में मरते जा रहे लोगों को वेदामृत की गंगा में नहला दें।

अन्यथा, अपौरुषेय वेद के ये कथित अनुयायी भी नपुंसक ही साबित होंगे। जबकि वेद स्वयं कहता है– **वीर, भोग्या वसुंधरा।** अर्थात् यह धरती वीरों (बुद्धि युक्त परिश्रमियों) के लिए है, कायरों के लिए नहीं!

निंगेश्वर मठ, निंगा,
आसनसोल (प. बंगाल)
मो. : 9735132360

Thearyasamaj.org

ऋषि दयानन्द के वह पल

● डॉ. बिजेन्द्र पाल सिंह

महर्षि दयानन्द के जीवन में बचपन से ही ऐसे पल आए जिन्होंने उनका जीवन बदल दिया। प्रथम वह घटना जब वह मन्दिर में मुँह पर पानी के छींटे मार–मार कर जागते रहे थे। मूल शंकर ने सुना था कि सो जाने पर शिवरात्रि का फल नहीं होता। मूल शंकर के पिता को भी नींद आ गई, सब सो गए, परन्तु वह छोटा बालक मूल शंकर जागता रहा और महादेव की मूर्ति को देखता रहा। अर्द्धरात्रि को कुछ मूषक मूर्ति पर चढ़कर कूदने लगे। बालक मूल शंकर के मन को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह गम्भीर सोच में पड़ गया कि जिसकी मैंने कथा सुनी थी यह वह महादेव या अन्य है। वह महादेव तो बैल पर चढ़ता, त्रिशूल हाथ में लेकर चलने फिरने वाला चेतन पुरुष है। वह डमरू बजाने वाला सबका कल्याण करने वाला, रक्षा करने वाला है और यह महादेव तो अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता। यह वह महादेव कैसे हो सकता है? मूल शंकर ने पिता को जगा कर यही प्रश्न किया परन्तु सन्तुष्टि नहीं मिली।

मूल शंकर के मन में इस घटना ने उथल पुथल मचा दी। बालक के मन में उस चेतन स्वरूप, संसार की रक्षा करने वाले, संसार का निर्माण कर चलाने वाले को जानने की तीव्र इच्छा जाग उठी।

ऋषि दयानन्द के जीवन में दूसरी घटना थी उनकी चौदह वर्ष की बहन की मृत्यु जो मूल शंकर से छोटी थी। मूल शंकर से छोटे दो भाई व दो बहन और थे। जब मूल शंकर की छोटी बहन की मृत्यु हुई तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। मूल शंकर के हृदय को बड़ा धक्का लगा। वह बालक सोचने लगा कि एक दिन मैं भी मर जाऊँगा अतः इस दुःख से छूटने का उपाय ढूँढना होगा। उन्नीस वर्ष का होने पर मूल शंकर के चाचा की मृत्यु हो गई इससे मूल शंकर को वैराग्य हो गया। वह सोचने लगे यह जीवन, यह संसार कुछ भी नहीं।

ऋषि दयानन्द (मूल शंकर) के मन में संसार की रक्षा करने वाले उस सत्य स्वरूप महादेव को जानने की गहरी उत्कण्ठा थी। सन् 1846 में मूल शंकर ने एक दिन संध्या काल में घर छोड़ दिया। तब मूल शंकर इक्कीस वर्ष के हो चुके थे। घूमते फिरते हुए सिद्धपुर मेले पहुँचे वहाँ सिद्धपुर मेले में पंडितों के मध्य गेरू से रंगे वस्त्र पहने बैठे थे कि वहाँ पर इनके पिता आ पहुँचे। क्रोधित हो बोले कि 'तू हमारे कुल में कलंक लगाने वाला पैदा हुआ है। मूल शंकर ने पिता जी की ओर देखा। उठकर चरण स्पर्श किए, नमस्कार कर कहा कि आप क्रोधित न होवें मैं किसी व्यक्ति के बहकावे में आ कर चला आया, मैंने बहुत दुःख उठाया है। अब मैं घर आने ही वाला था। अब आप आ गए वह अच्छा हुआ। अब मैं आपके साथ ही चलूँगा।

घर जा कर पिता ने मूल शंकर की सुरक्षा और बढ़ा दी, वह जमींदार थे नौकर–चाकर, धन–धान्य सब कुछ तो था उनके पास परन्तु मूल शंकर को तो सच्चे शिव की तलाश थी। न रहा गया तीसरी रात्रि जब सुरक्षा कर्मी सो गए, पहरेदार भी सो गया, उस समय लघु शंका के बहाने से मूल शंकर घर से निकल भागता हुआ एक मन्दिर के शिखर की गुफा में एक वृक्ष के सहारे से चढ़कर छिपा रहा। अंधेरा होने पर निकला और चलते चलते वड़ोदरा आ कर रुके। हृदय में जो जानने की उत्कण्ठा या अभिलाषा थी उसके लिए उन्होंने अपना सुख–वैभव त्याग दिया। पूर्णानन्द सरस्वती के यहाँ रहे वहाँ मूल शंकर का नाम संन्यास देकर दयानन्द सरस्वती रखा।

ऋषि दयानन्द घर से निकल अहमदाबाद, बड़ोदरा, चाणोद, आबू राज पर्वत, हरिद्वार, ऋषिकेश, टिहरी, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, केदारनाथ, तुङ्गनाथ पर्वत, काशी, जोशीमठ व अलकनंदा के किनारे ग्राम, नगर व जंगलों आदि में जहाँ कोई साधु, सन्यासी, मठ, मन्दिर, योगी पुरुष मिले वहाँ गए। नदियों में बर्फ से, आच्छादित पहाड़ियों, दुर्गम स्थानों पर गए। जंगली जानवरों से भी सामना हुआ। गंगा किनारे, मुरादाबाद, फर्रुखाबाद, श्रंगीपुर, कानपुर गए। अनेक पुस्तकें व ग्रन्थों आदि का अध्ययन किया। नर्मदा नदी के किनारे जंगल व नगरों में गए अनेक लोगों ने प्रलोभन भी दिए परन्तु ऋषि दयानन्द आगे बढ़ते रहे। मन में एक निश्चित आशा थी सच्चे शिव को जानने की, इसलिए किसी कष्ट की परवाह भी नहीं की।

अन्त में सन् 1860 चौदह नवम्बर को मथुरा दण्डी स्वामी विरजानन्द की कुटिया पर पहुँचे। वहाँ दरवाजे पर दस्तक दी। अन्दर से आवाज आई– कौन? दयानन्द ने कहा ''मैं कौन हूँ! यही जानने आया हूँ।'' दण्डी स्वामी ने विचार किया और दयानन्द को शिष्य बना लिया। तीन वर्ष तक दण्डी स्वामी के यहाँ शिक्षा प्राप्त की तब पता चला मैं कौन हूँ, दुनियां की रक्षा करने वाला वह सच्चा शिव कौन है, कहां रहता है क्या करता है! सन् 1863 में दयानन्द ने दण्डी स्वामी विरजानन्द से विदा ली। उनकी गुरु दक्षिणा थी वेद का प्रचार करना, अन्धविश्वास व पाखण्डों को दूर करना।

शिक्षा के पश्चात् दयानन्द ने पाखण्ड खण्डिनी पताका के माध्यम से वैदिक ज्ञान की ज्योति को प्रज्ज्वलित किया। भारतवर्ष में पैदल ही घूम कर क्रान्ति का सूत्रपात कर सुषुप्त समाज में नई क्रान्ति का आरम्भ कर दिया। इसके पश्चात् आरम्भ हुए शास्त्रार्थ, तर्क–वितर्क, उपदेश अनेक अवैदिक मत व सम्प्रदायों के साथ वाक्‌युद्ध, आर्यसमाज स्थापित किया। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, गो करुणानिधि, संस्कारविधि, व्यवहारभानु, वेदांगप्रकाश, अष्टाध्यायी भाष्य, आर्याभिनव जैसे सैकड़ों ग्रन्थ व पुस्तकें लिखीं।

ऋषि दयानन्द के देशी–विदेशी लोग शिष्य बने, राजा, महाराजा शिष्य बने, उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की जिससे वेद ज्ञान की गंगा अनवरत रूप से बहती रहे।

मूल शंकर जो एक दिन बालक था शिव मूर्ति को देखकर आश्चर्य कर रहा था कि जो चूहों से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता वह सच्चा शिव नहीं हो सकता अतः जो शिव चेतन है जगत् का निर्माता है जगत को चलाता है नियन्ता है सत्य स्वरूप है वह कोई और है और उस सच्चे शिव को ऋषि दयानन्द ने खोजा; जीवात्मा, परमात्मा व प्रकृति को जाना। तत् पश्चात वेद ज्ञान को सबके सामने रखा जिससे दुनियां जान जाए कि सच्चा शिव क्या है! संसार को बनाने व चलाने वाला कौन है?

गली नं. 2, चन्द्र लोक कालोनी
खुर्जा 203131
मो. 8979794715

गुरुकुल हरिपुर (ओडिशा) में वैदिक धर्म सम्मेलन सम्पन्न

गुरुकुल हरिपुर के संचालक डॉ. सुदर्शन देव आचार्य के सान्निधय में ओड़िशा प्रान्त के अनुगुल जिला के कुकुडांग ग्राम में त्रिदिवसीय वैदिक धर्म सम्मेलन एवं दिव्य मानस निर्माण शिविर ओड़िशा आर्यसमाज के विभिन्न पदाधिकारियों तथा अनेक गणमान्य महानुभावों की पावन उपस्थिति में अनेक उपलब्धियों के साथ सम्पन्न हुआ। इस त्रिदिवसीय सम्पूर्ण कार्यक्रम के सीधा प्रसारण की व्यवस्था स्थानीय दो–तीन चैनलों के माध्यम से की गई थी, जिसमें अनेक लोग लाभान्वित एवं वैदिक यज्ञ से परिचित हुये।

इस अवसर पर प्रतिदिन सुबह सप्त कुण्डीय वैदिक विश्व शान्ति यज्ञ एवं सायंकालीन प्रवचन कार्यक्रम में हजारों की संख्या में श्रदालु जनता की उपस्थिति रहती थी, श्री आचार्य जी की प्रेरणा से लगभग 20 परिवार वालों ने दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक यज्ञ करने का संकल्प लिया, तथा पचास के लगभग महानुभावों ने आर्यसमाज की सदस्यता स्वीकार की और कुकुडांग ग्राम में विधिवत् रूप से आर्यसमाज की स्थापना हुई, और उसी दिन आर्यसमाज की ओर से स्थानीय हाईस्कूल में पानी की व्यवस्था के लिए मोटर एवं पम्प का सहयोग भी प्रदान किया गया।

इस अवसर पर पूज्य स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी, देहरादून से पधारे भजनोपदेशक श्री सत्यपाल सरल उनके साथी तबला वादक तथा आचार्य श्रुतिप्रिय शास्त्री, गुरुकुल नवप्रभात आश्रम के वेदपाठी ब्रह्मचारियों का सहयोग सराहनीय रहा।

☞ पृष्ठ 05 का शेष

आर्यसमाज में उच्चतर ...

सब आडम्बर ही है। यह अवश्य हुआ है कि सत्यार्थप्रकाश के संशोधित 37वें संस्करण ने एक नया बिवाद अवश्य खड़ा कर दिया है। पं. मीमासक तथा पं. रामनाथ वेदालंकार की उपेक्षा की गई और विसंवादी स्थिति बनी। तो संस्थाओं द्वारा प्रारम्भ किये गये शोध प्रकल्पों का अन्ततः यह हश्र देखा गया।

इसके विपरीत, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी वेदार्थ में नये पथ का अन्वेषण, पं. विश्वबंधु (वेदों की विभिन्न अनुक्रमणियों का सम्पादन) पं. भगवद्दत्त (वैदिक वाङ्मय, भाषाविज्ञान, तथा भारतीयइतिहास), स्वामी ब्रह्ममुनि आदि विद्वानों ने स्वपुरुषार्थ से जो शोधकार्य किया, वह सर्वत्र सम्मानित हुआ। इस क्षेत्र में पं. उदयवीर शास्त्री का दर्शन के क्षेत्र में किया गया कार्य श्लाकनीय है। संस्थाओं के शास्त्र ज्ञान शून्य अधिकारीगण यदि शोध विद्वानों को अपने अनुशासन के द्वारा मनमाने ढंग से शासित करेंगे तो परिणाम यही होगा कि वैद्यनाथ शास्त्री को केवल सभा के वकील का सहायक बनकर रह जाना पड़ेगा।

315 शंकर कालोनी, श्री गंगानगर

Thearyasamaj.org

यज्ञोपवीत के तीन धागों का महत्त्व

● खुशहाल चन्द्र आर्य

यज्ञोपवीत के तीन धागे, मनुष्य के ऊपर जो तीन ऋण हैं, उनसे उऋण होने का संकेत करते हैं। ये धागे मनुष्य को याद दिलाते है कि तुम्हारे ऊपर जो तीन ऋण हैं, उनसे उर्ऋण होना तुम्हारा पावन कर्त्तव्य है, जिसका मनुष्य को पालन करना चाहिए। वे तीन ऋण इसी भांति हैं।

1. **ऋषि ऋण :** ऋषि ऋण का तात्पर्य यह है कि हमारे ऋषि–मुनियों ने बड़े परिश्रम और अपना पूरा जीवन स्वाध्याय में लगाकर, ईश्वर–प्रदत्त वेद ज्ञान का गहन अध्ययन करके उनके सही अर्थों के आधार पर उपवेद, उपनिषद्, दर्शन, ब्राह्मण–ग्रन्थ व स्मृतियाँ आदि लिखकर हमको पढ़ने के लिए जो सामग्री दे दी है उसको पढ़कर हम अपने जीवन को उन्नत व पवित्र बनाकर मोक्ष–मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं, इस लाभ के लिए जो हमारे ऊपर ऋषि–मुनियों ने उपकार किया है, उस ऋण से उऋण होने के लिए या उनके परिश्रम व स्वाध्याय को सफल बनाने के लिए एक ही मार्ग है, वह है हम उनके लिखे ग्रन्थों का स्वाध्याय नित्य करें और अपने जीवन को तथा दूसरे के जीवन को उन्नत बनाएं। तभी हम उनके ऋण से उऋण हो सकेंगे। जैसे एक पिता अपना पूरा जीवन लगाकर जो धन–संग्रह करता है, वह अपने पुत्रों को दे देता है, तब उन पुत्रों का यह कर्त्तव्य है कि उस धन की वृद्धि करें और परोपकार के कार्यों में लगावें। इसी प्रकार हम भी ऋषि–ऋण से तभी मुक्त होंगे जब हम उनके ग्रंथों का स्वाध्याय करके अपने जीवन को तथा दूसरों के जीवन को सफल व सुखी बनावें और उन्हीं ग्रन्थों के अनुसार और ग्रन्थ लिखकर आने वाली सन्तानों को और अधिक सामग्री देवें। यज्ञोपवीत का एक धागा इसी ऋण से मुक्त होने का सन्देश देता है।

2. **देव ऋण :** यह ऋण दो किस्म का होता है (1) पाँच जड़ देवता जिनमें पृथ्वी, जल, हवा, अग्नि व आकाश हैं। ये पांचों देवता हमारी पांचों ज्ञानेन्द्रियों, आंख, नाक, कान, जिह्वा व त्वचा इनको अपने प्रभाव से प्रभावित करके इनको ज्ञान यानी चेतना देकर कार्यों में प्रवृत्त करते हैं। अग्नि हमारी आंखों को रूप देखने की शक्ति देती है। आकाश शब्द के रूप में कानों को सुनने की शक्ति देता है। पृथ्वी गन्ध के रूप में नाक को सूंघने की शक्ति देती है। हवा स्पर्श के रूप में अनुभव करने की शक्ति देती है। इसी प्रकार जिह्वा को रस के रूप में पानी स्वाद लेने का अनुभव करवाता है। इन उपकारों के लिए हम इन जड़ देवताओं को यज्ञ द्वारा सन्तुष्ट व प्रसन्न करते हैं। यहाँ पर लिखना बहुत आवश्यक है कि जिस प्रकार शरीर के सब अंगों को खुराक व शक्ति पहुँचाने के लिए हम मुख से भोजन करते हैं। मुख से किया हुआ भोजन पेट में जाकर उसका खून व रस बनता है। उस खून व रस को हमारी शरीर की नसें (धमनियाँ) पूरे शरीर में जाकर प्रत्येक अंग को शक्ति देती हैं। इसी से उनमें कार्य करने की क्षमता आती है। इसी प्रकार अग्नि सब जड़ देवताओं का मुख है। यज्ञ द्वारा दिया हुआ घी तथा सामग्री अग्नि में जल कर उसकी सुगन्ध हजार गुणा तेज होकर प्रकृति के बाकी चारों देवताओं के पास पहुँचा देती है यानी पूरी प्रकृति में जो प्राणियों द्वारा किये गये श्वांस, टट्टी, पेशाब व पसीना आदि से जो दुर्गन्ध होती है वह यज्ञ द्वारा सुगन्धित हो जाती है और पूरा वातावरण सुगन्धित व पवित्र हो जाता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह जितना वातावरण अपने शरीर से बाहर आने वाली वस्तुओं से गन्दा करता है, उतना ही वातावरण को यज्ञ द्वारा सुगन्धित करे जिससे पूरा वातावरण सदैव ही पवित्र बना रहे। इसीलिए वेद में भी "यज्ञो वै श्रेष्ठतम् कर्म" कहकर यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म बताया है। साथ ही 'स्वर्गकामो यजेत" स्वर्ग की कामना करने वालों को यज्ञ करना चाहिए। दूसरा देव है, देवो का देव "महादेव" यानी ईश्वर। ईश्वर ने प्राणि–मात्र पर विशेषकर मनुष्य के ऊपर बड़े उपकार किये हैं। ईश्वर ने मनुष्य के लिए सुन्दर सृष्टि की रचना करके मनुष्य के उपयोग, सहयोग व उपभोग के लिए जल, वायु, अग्नि, फल–फूल, पशु–पक्षी आदि निःशुल्क देकर बड़ा उपकार किया है। इन्हीं के सहयोग से मनुष्य अपने जीवन को सुन्दर ढंग से चलाते हुए अपना तथा दूसरों का जीवन सुखी बनाते हुए मोक्ष की ओर अग्रसर होता है जो जीव का अन्तिम लक्ष्य है।

ईश्वर के इस निःस्वार्थ उपकार के लिए हम सन्ध्या करते हैं। सन्ध्या में हम ईश्वर के गुणों का गुणगान करते हैं और उसके गुण दया, करुणा, परोपकार, सहायता, सहयोग आदि गुणों को अपने जीवन में धारण करते हैं जिससे हमारा जीवन उत्तम और श्रेष्ठ बनता है और हम मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी बनते हैं। इन उपकारों के ऋण से हम सन्ध्या द्वारा उऋण होते हैं। इसीलिए दिन में दो बार प्रातः व सायं सन्ध्या करना हमारे ऋषि–मुनियों ने बताया है, जिसे सब मनुष्यों को करना चाहिए।

ईश्वर के इस निःस्वार्थ उपकार के लिए हम सन्ध्या करते हैं। सन्ध्या में हम ईश्वर के गुणों का गुणगान करते हैं और उसके गुण दया, करुणा, परोपकार, सहायता, सहयोग आदि गुणों को अपने जीवन में धारण करते हैं जिससे हमारा जीवन उत्तम और श्रेष्ठ बनता है और हम मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी बनते हैं। इन उपकारों के ऋण से हम सन्ध्या द्वारा उऋण होते हैं। इसीलिए दिन में दो बार प्रातः व सायं सन्ध्या करना हमारे ऋषि–मुनियों ने बताया है, जिसे सब मनुष्यों को करना चाहिए।

3. **पितृ ऋण :** माता–पिता तथा वृद्ध जनों के हमारे ऊपर बहुत उपकार होते हैं। माता हमको नौ महीने पेट में रखती है, फिर बालकपन में हमारा पालन करती है। हमें चलना–बोलना सिखाती है। पिता अपने बच्चे को अच्छी शिक्षा दिलाता है, फिर उसका विवाह करके कमाने के योग्य बनाता है और अपना कमाया हुआ धन बच्चों को दे देता है। वृद्धजनों का अनुभव व उनका आशीर्वाद हमारा बहुत सहयोगी बनता है। इस प्रकार माता–पिता व वृद्धजनों का उपकार हमारे पूरे जीवन को सुखी व समृद्धशाली बनाने में अति सहयोगी रहता है, इसलिए हमें उनकी सेवा व सुश्रूषा पूरी श्रद्धा के साथ करनी चाहिए जिससे हम उनके ऋण से कुछ अंशों में उऋण हो सकें। इस प्रकार यज्ञोपवीत का तीसरा धागा हमें माता–पिता एवं वृद्धजनों की सेवा व सुश्रूषा करने का आदेश देता है। हमें यहाँ यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि सेवा और सुश्रूषा क्या होती है। सेवा को तो सभी जानते हैं। माता–पिता की खाने–पीने, रहने–सहने आदि की सुन्दर व्यवस्था करना उनको हर किस्म से प्रसन्न रखते हुए उनकी आज्ञा का पालन करना सेवा कहलाती है। सुश्रूषा का तात्पर्य है उनकी बात को आदरपूर्वक सुनना यानी उनकी बातों या उनकी इच्छाओं की अवहेलना न करना। उनसे हर काम पूछ कर करना और उनके महत्त्व को बनाए रखना उनकी सुश्रूषा करना है। आजकल माता–पिता व वृद्धजनों की सेवा तो कुछ अंश में हो जाती है परन्तु सुश्रूषा का अभाव बना रहता है इसलिए सुश्रूषा पर भी बच्चों को पूरा ध्यान रखना चाहिए।

एक बात यह भी जानने योग्य है कि हमारे पौराणिक भाई छः धागों की यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनते हैं। उनका मानना है कि स्त्रियों को यज्ञोपवीत नहीं पहनना चाहिए कारण ये चार दिन अपवित्र रहती हैं। परन्तु यह स्वार्थी पंडितों का डाला हुआ अन्धविश्वास है कारण अपवित्र तो मनुष्य ट्टटी जाते वक्त तथा पेशाब करते वक्त भी रहता है। इसलिए जब पुरुष जनेऊ पहनता है तो स्त्रियाँ भी जनेऊ पहनें तो कोई आपत्ति नहीं। स्त्रियों को यज्ञोपवीत न पहनने देना यानी उनको तीनों ऋणों से वंचित रखना, यह नारी जाति के ऊपर अन्याय करना है। क्या स्त्रियाँ अपने माता–पिता, सास–स्वसुर की सेवा व सुश्रूषा नहीं कर सकतीं? इतना ही क्यों मध्यकाल में तो इन स्वार्थी पण्डितों ने तो स्त्रियों व शूद्रों से वेद पढ़ने व सुनने का अधिकार भी छीन लिया था। यह तो देव दयानन्द का बहुत बड़ा उपकार है कि उन्होंने स्त्रियों व शूद्रों को वेद पढ़ने व सुनने का अधिकार दिलाया। इसीलिए ऋषि ने आर्य समाज के दस नियमों में तीसरा नियम यह भी बताया कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों (सज्जन व श्रेष्ठ पुरुषों व स्त्रियों) का परम धर्म है।" अब हमें यह अन्धविश्वास कि स्त्रियों को यज्ञोपवीत धारण नहीं करना चाहिए, इसे हटा देना चाहिए ताकि स्त्रियाँ भी यज्ञोपवीत धारण करके तीनों ऋणों का पालन कर सकें जो ऋषि के बताने से वेदानुकूल है।

180 महात्मा गान्धी रोड
(दो तल्ला) कोलकाता–700007
फोन. 033–22183525, 64505013

Thearyasamaj.org

वैदिक संस्कृत से लौकिक और लौकिक संस्कृत से ही (देवनागरी) हिन्दी का विकास हुआ है

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

वेद संसार के पुस्तकालयों में सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। रामायण काल के पूर्व से ही आर्य एवं ऋषिगण वैदिक भाषा में व्यवहार करते थे। उसके पश्चात् वैदिक संस्कृत से लौकिक भाषा बनने लगी। बाल्मिकि जी ने रामायण को लौकिक संस्कृत में ही लिखा था। वेदों के भाव लौकिक जैसे नहीं होते। वेदों के शब्द यौगिक होते हैं, लौकिक संस्कृत की तरह रूढ़ी नहीं। देखने में समान प्रतीत होने वाली लौकिक एवं वैदिक संस्कृत के अर्थ में काफी अन्तर है। अतः लौकिक संस्कृत के आधार पर वैदिक मंत्रों का ठीक–ठीक भवार्थ नहीं किया जा सकता। वेद मंत्रों को समझने के लिये (वैदिक व्याकरण) निरुक्त एवं निघण्टु का ज्ञान होना आवश्यक है।

जब से मुगलों, यवन (यूनानी), क्षत्रप, आमीर, गुर्जर, तुरुष्क, हूण (यहुदी) मग, मैत्रिक, कम्बोज जाति के लोग भारत में आने लगे, तभी से भाषा बदलने लगी। सन् 712 ई. पूर्व मुसलमानी राज्य के पहले तक संस्कृत भाषा का ही प्रचलन था। उसके पश्चात यूनानी, मुगलों और मुसलमानों से उस समय कतिपय (भारतीय आर्य) हिन्दू गण अपनी अज्ञानता, लालच अथवा अन्य कारणों विवाह आदि के सम्बन्ध से उन अनार्य धर्मों में जा मिले, इस प्रकार जाति मिश्रण बहुत हुआ और तभी से संस्कृत भाषा का व्यवहार लुप्त होने लगा। साथ ही मध्ययुग के पूर्व से ही (देवनागरी) हिन्दी अक्षरों का शोधन होने लगा। जैसा कि 'वैदिक सम्पत्ति' में सभी स्वर एवं अक्षरों को विस्तारपूर्वक दिखलाया गया है कि 'देवनागरी लिपि' के स्वर और अक्षर कैसे परिवर्त्तन होते–होते अब इस प्रकार 'अ' और 'क' आदि के स्वर और अक्षर लिखा जाने लगा। जैसे सन् 1081ई. की हस्तलिखित नागरी लिपि का नमूना (अ) को मौर्य (दिल्ली) H, कुषण के समय H, गुप्त के समय 'प्र', मध्यकालीन 'अ, उ उ, अ, जयचन्द के समय अ, आधुनिक नागरी 'ऋ' अ, इस प्रकार हुआ।

अब (क) को देखिये–मोर्य, '+', कुषण +, गुप्त λठ् म, मध्यकालीन, 'म' म, म, जयचन्द म, आधुनिक नागरी 'क' इस प्रकार लिखा जाता है। हिन्दी को आगे बढ़ाने में, महाकवि, कवि और उपन्यास लेखकों का पूरा सहयोग रहा। हिन्दी जैसा सरल भाषा दूसरा कोई नहीं है। जैसा लिखा जाता है वैसा ही पढ़ा जाता है, किन्तु इसका व्याकरण बहुत कठिन है। हिन्दी में प्रत्येक पदार्थ का स्त्रीलिंग और पुलिंग होता है, जबकि बंगला और अंग्रेजी क्लीब लिंग है। हिन्दी ऐसी उत्तम भाषा है कि कमरे में बंद व्यक्ति समझ जाता है कि लड़की गई या लड़का। जैसे–आप कहाँ जाती हो, आप कहाँ जा रहे हैं। बंगला में 'आपनी कोथाय जाच्छेन, लड़का जाता हो या लड़की, 'आपनी कोथय जाच्छेन। अंग्रेजी में भी 'हवेरआर यू गोईन' इन शब्दों से कमरे में बन्द व्यक्ति नहीं समझ पाया कि लड़की गई या लड़का किन्तु हिन्दी में समझ गया कि नारी गई या पुरुष। 'य' 'क' 'क्ष' हिन्दी के इन्हीं तीन विशेष अक्षरों से जैसा लिखा जाता है। जैसे 'रेलवे'। बंगला में 'क' न रहने के कारण 'रेलओए' को रेलवे पढ़ा जाता है, उसका हिन्दी में केवल तीन अक्षर का प्रयोग होता है, किन्तु उसी को अंग्रेजी में, (RAILWAY) इतने वाड़ का प्रयोग होता है। शुद्ध शब्द हिन्दी में 'यज्ञ' को बंगला में 'जग्य' पढ़ा जाता है। शुद्ध शब्द 'लक्ष्मण' को बं. में 'लक्खन' और 'लक्ष्मी' को 'लक्खी' पड़ा जाता है। देवनागरी लिपि हिन्दी में विशेषता यही है कि जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है।

''वैदिक व्याकरण अपनी पूरी वर्णमाला, धातुपाठ, प्रत्ययनियम, तीनलिंग, तीन वचन, आठ विभक्ति, दशलकार, संधिकौशल और स्वर विज्ञान के लिये जगत्प्रसिद्ध है। इस समस्त प्रक्रियाओं का जब वाक्यों में ठीक–ठीक उपयोग होता है, तब वे वाक्य अचल और अटल बन जाते हैं। उन वाक्यों में जो कुछ कहा जाता है वह जिससे कहा जाता है उसके पास उसी रूप में पहुंचता है, जिस रूप में वह वक्ता के पास था। हजारों वर्ष तक उस वाक्य का वहीं मतलब निकलता रहेगा, जो उसके बनने के समय निश्चित हुआ था। इसका कारण यही है कि वाक्य अपनी वर्णमाला, स्वर, धातु और अन्य व्याकरण के नियमों में अच्छी तरह ग्रथित कर दिया गया है। (वैदिक सम्पत्ति, पृ. 245)''

'व्याकरण की यह खूबी संसार के किसी व्याकरण में नहीं है। किसी अंग्रेजी पढ़ने वाले से पूछिये कि 'एन' और 'ओ' नों होता है, पर 'डी' और 'ओ' से 'डो' क्यों नहीं होता? तो वह बिचारा कुछ भी उत्तर न दे सकेगा। इसी तरह अरबी पढ़ने वाले से पूछिये कि जिस तरह 'कत्ल' से कातिल और मकतूल 'सब्र' से साबिर और मसबूर बनता है उसी तरह जालिम और मजलूम बनाने वाली धातु 'जुल्म' क्यों नहीं? उसे 'जुल्म' क्यों कहा जाता है? पर इसका भी उत्तर नहीं है। इस गड़बड़ का कारण व्याकरण की अपूर्णता है। परन्तु वेदों के पूर्ण व्याकरण में ऐसी त्रुटियों के लिये बिल्कुल स्थान नहीं है।'

1. वेद भाषा का व्याकरण संस्कृत भाषा से भिन्न है। संस्कृत में अकारान्त पुंलिग द्विवचन में 'औ' होता है, जैसे 'रामौ' किन्तु वेद में 'आ' है। यदि संस्कृत और वेदभाषा एक ही होती, तो संस्कृत के व्याकरणानुसार वेद में 'द्वासुपर्णासमुजासखाया' के स्थान में 'द्वौ सुपर्णी समुजौसखायौ' होता।

2. वेद में एक लकार अधिक है, जिसे 'लेट' लकार कहते है। यह संस्कृत में ही नहीं प्रत्युत संसार भर की किसी भाषा में नहीं है।

3. वेद भाषा में एक अक्षर अधिक है, जो संस्कृत साहित्य में नहीं आता। वह अक्षर 'ळ' है और 'अग्निमीळेपुरोहितम्' मंत्र में आता है।

4. वेद भाषा अपना अर्थ स्वरों से पुष्ट करती है। यह कौशल संसार की किसी भाषा में नहीं है।

5. वेदों के बहुत से शब्द जिस अर्थ में आते हैं, वही शब्द संस्कृत में उस अर्थ में नहीं आते। (देखें वैदिक सम्पत्ति 224 से)।

हिन्दी के सम्बन्ध में कवि पं. आर्य प्रहलाद गिरि लिखे हैं कि–

अतः युगों से भारत माँ है, हिन्दी है इसकी भाषा। भारत–पुत्रों की हुई श्री हिंदी मातृभाषा।।

हिंद देश की इसी भाषा की लिपि भी सर्वोत्तम् है। जो न इस लिपि अपना वे, उसकी सोच अधम है।।

ग्रामीण बोलियाँ गांव में बोलें, प्रांत भाषों से प्यार करें। राष्ट्रभाषा–लिपि में ही हम राष्ट्रभाव विस्तार करें।।

विद्यार्थियों को चाहिये कि पहले राष्ट्रभाषा हिन्दी को पढ़े, साथ ही उसके व्याकरण को भी जानें। क्योंकि जिस विद्या के द्वारा किसी भाषा के ठीक–ठीक लिखने बोलने और समझने का ज्ञान हो उसे 'व्याकरण' कहते हैं।

विदेशी भाषा अंग्रेजी का भी ज्ञान होना आवश्यक है। विद्वान लोग यदि चाहें तो जिन आविष्कारों के नाम अंग्रेजी में है, उन सबका नाम हिन्दी में भी कर सकते हैं, जैसे–'मोबाईल' को 'चलभाष अथवा 'वायुदूत'।'टी.वी. को दूरदर्शन'।कम्प्यूटर को 'गणकयन्त्र' आदि सभी के नाम हिन्दी में किया जा सकता है।

जब सन् 1600 ई. में अंग्रेजी ने भारत में 'इस्ट इण्डिया कंपनी' नहीं खोला था, तब उसके पहले से भारत की भाषा 'संस्कृत अथवा हिन्दी ही थी। वैसे भारत के जो जिस राज्य में बालक जन्म लेता है, उस राज्य की, वही उसकी मातृ भाषा होती है। जैसे–मगध वासी मगही, भोजपुर की भोजपुरी, अवधी, मैथिली, ब्रजादि ये सब आंचलिक भाषायें, ग्रामीण बोलियाँ है। पंजाबी, बंगला, तामिल, तेलगु, मलयालम, गुजराती ये सब प्रिय प्रान्तीय भाषायें हैं। अतः बालक जो भाषा सिखता है, मातृ गोद में, वहीं उसकी मातृभाषा कही जाती हैं। किन्तु आगे चलकर भारतपुत्रों के लिये हिन्दी लिपि ही मातृभूमि की मातृभाषा कही जानी चाहिये। किन्तु आज इस परिवर्तन के युग में 75 प्रतिशत विदेशी भाषा अंग्रेजी को ही मातायें अपने बालकों को मातृभाषा के रूप में परिचय करा रही हैं। और अपने को 'मम्मी, मोम' आदि के कहने से प्रसन्न रहती है, और पुत्रों को अंग्रेजी स्कूल में भर्ती कराने में अपना गौरव समझती हैं। फिर जैसे–जैसे बालक बड़ा होता जाता है वैसे–वैसे उसमें विदेशी सभ्यता, आहार–विचार पनपने लगता है, वह भारतीय संस्कृति सभ्यता से दूर होने लगता है। माता–पिता के प्रति कर्त्तव्य, कर्म को भूल जाता है। केवल भौतिकी शिक्षा के कारण, चरित्र का निर्माण नहीं कर पाता। धर्म तत्व के ज्ञान से बहुत दूर चला जाता है। केवल यही नहीं व्यापार करने वाले भी आध्यात्मिक योगध्यान के लिये उन्हें समय नहीं मिलता।

अंग्रेजी में बोलने का महत्व इतना बढ़ गया है कि यदि उस भाषा में 3–4 अपशब्द भी बोल दे तो भी उसका असन्मान नहीं किया जाता। जिस विज्ञान को अंग्रेजी में पढ़ा जाता है, उसी को हिन्दी में भी पढ़ा जा सकता है। अतः हिन्दी हमारे हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा है। इसकी कदर अंग्रेजी से बढ़कर है। सन् 2014 या 2015 में हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जहाँ भी देश–विदेशों में गये, राष्ट्र भाषा हिन्दी में ही भाषण दिये। विदेशी लोग भी जब भारत में आते हैं तो वे भी अपने देश की भाषा बोलते हैं।

मु. पो. मुरारई, जिला–वीरभूम
(प. बंगाल) 731219
मो. 8158078011

Thearyasamaj.org

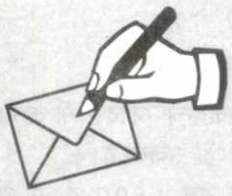

पत्र/कविता

इस तरह कब तक चलेगा? निराशा छोड़ें, वेद प्रचार करें

13 से 19 अप्रैल की आर्य जगत् पत्रिका में श्री भारतेन्दु सूद का लेख 'वेदों के अनुरूप ही हिन्दू धर्म का सम्मान सम्भव है' शीर्षक से लेख छपा है जो सब आर्यजनों के लिये विशेष ध्यान देने योग्य है। इस लेख में यह बताया गया है कि पिछले 2000 सालों में पहली बार एक व्यक्ति हिन्दू धर्म के पांखडों के विरुद्ध खुलकर मैदान में आया था जिसका नाम दयानन्द सरस्वती था। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने 1947 तक समाज में फैले अज्ञान और अन्धविश्वासों को दूर करने में बहुत जबरदस्त कार्य किया परन्तु देश की आज़ादी के बाद आर्य समाज अपने रास्ते से भटक गया इसलिये आज देश में और कोई संस्था ऐसी नहीं जो वेद का प्रचार करे। वास्तव में देश के विभाजन से आर्य समाज की बड़ी हानि हुई है उसकी अरबों रुपयों की सम्पत्ति पाकिस्तान में चली गई। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जिसका मुख्यालय लाहौर था वह सारे पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कश्मीर और दिल्ली तक वेद प्रचार करती थी परन्तु देश विभाजन के बाद सारा कार्य ठप्प हो गया। पाकिस्तान से शरणार्थी बन कर आये लोगों ने भारत में आकर नई आर्य समाजों तो स्थापित कर लीं परन्तु वेद प्रचार का कार्य ढ़ीला पड़ गया। आर्य समाज के विद्वानों ने अन्य मत सम्प्रदाय के विद्वानों के साथ सैंकड़ों शास्त्रार्थ किये थे। उन से जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा था परन्तु विभाजन के बाद यह सब बन्द हो गये इससे आर्य समाज का वेद प्रचार भी बन्द सा हो गया परन्तु आर्य समाजों की संख्या तो काफी बढ़ी। आर्य समाज के छठे नियम में संसार का उपकार करना अर्थात् शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति करना जिसका मुख्य उद्देश्य था उलझ गया।

आर्य समाज केवल साप्ताहिक हवन करने तक ही सीमित हो गया। आर्य समाज के अधिकारी वेद प्रचार करने कराने से डरने लगे। वेद में स्पष्ट तौर पर ईश्वर को निराकार बताया गया है और यह भी कहा है कि उसकी कोई मूर्ति नहीं है (यजुर्वेद 32–3 तक 40–8) चारों वेदों में एक भी मंत्र ऐसा नहीं है जिसमें बताया हो कि ईश्वर की इस प्रकार की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा की जाये। और तो और भागवत पुराण स्कन्द 10, अध्याय 4 में यह स्पष्ट कहा है कि पानी के तीर्थ नहीं होते मिट्टी पत्थर की मूर्तियां देवता नहीं होतीं। यह चिरकाल तक पूजने से भी पवित्र नहीं करतीं (देखो श्लोक 11–13) परन्तु आर्य समाज इन मूर्ति पूजकों से डर गया है कि लोग नाराज न हो जायें। इस तरह आर्य समाज कब तक चलेगा?

इस समय देश विदेश में दस हजार के लगभग आर्य समाजें स्थापित हो चुकी हैं इसलिए किसी से डरो नहीं, वेद प्रचार होते रहना चाहिये तभी आर्य समाज जीवित रह सकता है। हमारा धर्म वैदिक है यही सब जगह लिखना लिखाना चाहिये। हिन्दू कोई धर्म नहीं है।

हिन्दुस्तान में रहने के कारण हम हिन्दु भी कहलाते हैं। आर्य समाज को समाज सुधार तथा देश उद्धार के लिये भी आन्दोलन करते रहना चाहिये। टी. वी. चैनल पर प्रतिदिन कम से कम एक घण्टा वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार होना चाहिये। पाखंड फैलाने वाले तो कितने ही चैनल हैं। आर्य समाज के अधिकारी आर्य समाज से बाहर निकलकर जनता में वेद प्रचार करें, निराशा छोड़ें।

अश्विनी कुमार पाठक
सी 233 नानक पुर,
नई दिल्ली–110021

****

सत्संग -महिमा

सत्संग अमृत पान करो मेरे भाई,
जीवन उत्थान करो मेरे भाई।

श्रद्धानन्द मुन्शीराम बने थे,
अमर शहीद लेखराम बने थे।
गुरुदत्त सा महान करो मेरे भाई।
जीवन उत्थान करो मेरे भाई।।...

अमीचन्द निखरा हीरा बनकर,
अंगुलीमाल बदला भिक्षु बनकर।
सत्संग गुणगान करो मेरे भाई।
जीवन उत्थान करो मेरे भाई।।...

मघई महका बनकर फुलवारी,
मुगला बन गया था सदाचारी।
जीवन निर्माण करो मेरे भाई।
जीवन उत्थान करो मेरे भाई।।...

सत्संग सुनो व मनन करो तुम,
सद्गुणों का आचरण करो तुम।
चिन्तन परवान करो मेरे भाई।,
जीवन उत्थान करो मेरे भाई।।....

सत्संग मन को संकल्पित करता,
चित्त को यह संतुलित करता।
बुद्धि गुणवान करो मेरे भाई।
जीवन उत्थान करो मेरे भाई।।...

अरे आनन्द झरना झर जाएगा,
प्रियतम प्यारा मिल जाएगा।
दूर अपना अज्ञान करो मेरे भाई।
जीवन उत्थान करो मेरे भाई।।....

सत्संग विवेकी कर देता है,
खाली झोली भर देता है।
'चैतन्य' का ध्यान करो मेरे भाई।
जीवन उत्थान करो मेरे भाई।।...

महात्मा चैतन्यमुनि
महादेव, सुन्दरनगर–174401, हि.प्र.

ज्ञान का प्रचार प्रसार है श्रेष्ठ कर्म

ज्ञानोपार्जन और ज्ञान का प्रचार और प्रसार इतना श्रेष्ठ कर्म है कि यदि ऐसा करते हुए जीव को इस जन्म में मुक्ति नहीं मिलती तब भी इस जन्म में ही मनुष्य जन्म तो पाना अवश्य ही निश्चित हो जाता है। क्योंकि जिस वस्तु का दान हम करते हैं आगे उपयोग के लिये वही वस्तु हमें परमात्मा की कृपा के रूप में मिलती है। ज्ञान मनुष्य के उपयोग की वस्तु है पशु पक्षी ज्ञान का उपयोग नहीं करते। यही कारण है हमारे ऋषि–महर्षियों की अपेक्षा है, मनुष्य को जानी हुई अच्छाई के प्रचार–प्रसार के लिये समय निकाल कर अवश्य ही काम करना चाहिए।

– पं. भूदेव
मो. 09213107453

****

Thearyasamaj.org

बन्दी की विदाई

(कारागारीय संस्मरण)

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

आज ज्यों ही मैंने कारागार में प्रवेश किया तो चिर परिचित पंडित जी मिल गए। वह लगभग दस वर्षों से कारागार में बन्दी थे।

''पंडित जी, आज बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हो रहे हैं।'' मैंने देखते ही प्रश्न किया।

''गुरु जी, मैंने आपको बहुत पहले बताया था कि बेटी की शादी है। दो दिन के लिए पैरोल पर छूट कर घर जाऊँगा।'' पंडित जी ने धीरे से कहा।

''कैसे हुई शादी?''

''ठीक–ठाक ही थी।''

''ठीक–ठाक ही थी, ऐसा क्यों बोल रहे हैं। सीधे बोलिए, ठीक–ठाक थी।''

''गुरु जी, आप लोगों की शादी ठीक–ठाक हो जाती है पर बन्दियों की शादी ठीक–ठाक हो जाये तो गनीमत है। इसलिए मैंने 'ही' का प्रयोग किया है।''

''तो इस 'ही' का कारण भी बता दीजिए, क्या कोई खास बात हुई? क्या कोई ऐसी घटना हुई जो उल्लेखनीय हो?''

''वहाँ जो कुछ हुआ, वह सारा उल्लेखनीय है।''

''आप तो पहेलियाँ बुझा रहे हैं, साफ–साफ बताइये।''

''बन्दी की बेटी होना, क्या अपने आप में उल्लेखनीय नहीं है? मैं दो दिन के लिए पैरोल पर छूट कर घर गया था, ताकि बेटी की विदाई कर सकूँ।''

''विदाई तो सब करते हैं, इसमें उल्लेखनीय बात क्या है?''

''उल्लेखनीय बात यह है कि मेरी दृष्टि में मेरी बेटी ने मेरी विदाई की।''

''ये क्या बोल रहे हैं आप?''

''सच बोल रहा हूँ। जब बेटी की विदाई होने लगी तब मेरी बेटी बुरी तरह दहाड़ मार कर रोने लगी। मुझसे बुरी तरह चिपट गई और रोते हुए कहने लगी, ''पिता जी, भगवान् सब देखने वाला है। आप जेल से जल्दी लौट कर आयेंगे। हम सब आपकी रिहाई के लिए भगवान से प्रार्थना करेंगे।'' भले ही वह भी जानती थी और मैं भी जानता था कि मेरे जेल से छूटने का कोई भरोसा नहीं है। हो सकता है यह अंतिम मुलाकात हो। पर वह जिस ढंग से मुझे ढाढ़स दे रही थी, मैं पल भर के लिए उसकी बेटी बन गया और वह मेरा पिता। जो बातें मुझे कहनी चाहिए थीं वे बातें मेरी बेटी कह रही थी, बताइये, क्या यह मेरी विदाई नहीं थी? मैं अपनी बेटी से कहना चाहता था कि वह रोते नहीं, चार–पाँच दिन बाद तू हमारे घर आएगी। पर यह बात मैं कैसे कहता? क्योंकि अब तो जेल ही मेरा घर है। क्या मैं अपनी बेटी को जेल बुलाता?'' इतना कहकर पंडित जी फफक–फकक कर रोने लगे।

फिर वह कुछ संभल कर बोले, ''वहाँ जितने भी लोग थे, सभी की आँखों में बाढ़ आई हुई थी। वे एक ऐसे अनोखे दृश्य को देख रहे थे, जहाँ पिता केवल रो रहा है और विदा होने वाली बेटी उसे समझा रही है। फिर गाँव की औरतें जबरदस्ती मेरी बेटी को मुझ से छुड़ा कर डोली के पास ले गईं। मैं अभागा इतनी हिम्मत भी न जुटा सका कि अन्तिम बार उसे आशीर्वाद देने के लिए अपना हाथ उसके सिर पर रख सकूँ।'' पंडित जी की आँखें फिर डबडबाने लगीं।

''फिर क्या हुआ?'' मुझ बेरहम ने भी उन पर दया नहीं की।

''मेरी बेटी विदा हो गई। दूर–दूर तक उसकी चीख–पुकार सुनाई देती रही। मानो वह सबसे कहती जा रही थी, 'मेरे पिता जी को बचा लो।' मुझे भी ऐसा लग रहा था कि जैसे कोई मुझ से मेरे प्राणों को छीन कर ले जा रहा हो। मैं रोता रहा, छटपटाता रहा और अन्त में वहीं धड़ाम से गिर पड़ा।''

''बेटी की विदाई के बाद तो आप संभल गए होंगे?'' मैंने फिर उनके हरे घाव पर नमक छिड़क दिया।

''मेरी ऐसी किस्मत कहाँ? बेटी की विदाई के बाद अब मेरी विदाई थी। मुझे भी तो अपनी ससुराल (जेल) जाना था। लोग मेरे घर से जाने का नाम नहीं ले रहे थे। पहली बार तो उन्हें दो–दो (पुत्री और पिता) को विदा करने का मौका मिला था। मैंने अपना खास सामान संभाला, थोड़ा बहुत लेन–देन का कार्य किया और बाकी काम अपने बड़े भाई साहब को समझा दिया। सभी ग्राम वासियों के प्रति आभार प्रकट करके ज्यों ही मैं जाने से पूर्व अपने छोटे बेटे से मिलने के लिए गया तो उसने अपने को कमरे में बन्द कर लिया। मैंने दरवाजा खटखटाया, आवाज दी, पर उसने दरवाजा नहीं खोला । अन्दर उसके रोने की आवाज आ रही थी और बाहर मेरे सिसकने की। आज तो उसने मुझ से यह भी नहीं कहा कि मेरे सब दोस्तों के पास मोबाइल हैं, मेरे लिए भी मोबाइल ले आना। लगता है उसे पहली बार अहसास हुआ कि मोबाइल के बजाय पिता सबसे जरूरी है। और मैं बेटे से बिना मिले चल पड़ा।''

''पंडित जी, आपका बेटे रोते हुए आपसे कैसे मिल पाता?''

''गुरु जी, भगवान् ने कुछ व्यक्ति खास प्रयोजन से बनाए हैं, जैसे अध्यापक पढ़ाने के लिए, किसान खेती–बाड़ी के लिए, सैनिक देश की रक्षा के लिए तो कैदी और उसके परिवार वाले सिर्फ रोने के लिए, जिन्दगी भर तड़पने के लिए।''

''यह माना कि बन्दी जनों का जीवन कष्टमय होता है परन्तु क्या अपराधी व्यक्तियों को सज़ा नहीं मिलनी चाहिए?''

''सज़ा मिलनी चाहिए लेकिन जेलों में नब्बे प्रतिशत ऐसे व्यक्ति होते हैं जो बेगुनाह होते हैं जिन्हें किसी साजिश, स्वार्थपूर्ति, प्रतिशोध, ईर्ष्या, धनप्राप्ति या राजनीतिक कारणों से फँसा दिया जाता है। कितनी विचित्र बात है, किसी भी व्यक्ति को किसी एक व्यक्ति के कह देने मात्र से हत्या या चोरी के आरोप में जेल में डाल दिया जाता है और वह आरोपित व्यक्ति जिन्दगी भर स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए छटपटाता रहता है परन्तु उसे कारागार से मुक्ति नहीं मिलती।''

''आप अपने बारे में क्या कहना चाहेंगे?'' मैंने उनकी ही नब्ज पर हाथ रख दिया।

''आपकी दृष्टि में मैं हत्यारा हो सकता हूँ परन्तु मैं स्वयं जानता हूँ और मेरा भगवान् भी जानता है कि मैं हत्यारा नहीं हूँ। बात इतनी सी है कि मैं प्रायः अपनी पत्नी से कहा करता था कि मेरे माता–पिता बहुत बूढ़े हैं। तुम्हें मेरे साथ रहने के बजाय उनकी सेवा में अधिक रहना चाहिए। मैं तो टीचर हूँ, मेरी मजबूरी है कि मैं उन्हें सुदूर पहाड़ी गाँवों में अपने साथ नहीं रख सकता। मेरी पत्नी को इसी बात की नाराजगी थी कि मैं उसे बार–बार क्यों टोकता हूँ? मैंने एक शिकायत भरा पत्र उसके पिता जी को भी लिख दिया। बस इन्हीं कारणों से मेरी अल्पशिक्षित, नासमझ पत्नी ने मेरी अनुपस्थिति में मिट्टी का तेल डालकर अपने शरीर पर आग लगा ली और मेरे घर पहुँचने तक संसार से विदा हो गई। क्या इतनी छोटी सी बात पर आत्महत्या करनी उचित थी? पति–पत्नी में तो थोड़ी बहुत तू–तू, मैं–मैं चलती ही रहती है। अतः मेरा अपराध यही है कि मैं उसका पति था। आज मैं दुनिया की दृष्टि में अपराधी हूँ, हत्यारा हूँ तथा बन्दी हूँ।''

''पर आप अपनी दृष्टि में तो निरपराध हैं।''

''पर अपनी दृष्टि या मेरे सोचने से क्या मैं कारागार से मुक्त हो जाऊँगा, मुझ पर हत्यारा होने का जो धब्बा लगा है क्या वह धुल जायेगा? आप पी–एच.डी. हैं, लोग आपको आपके जिन्दा रहने तक 'डाक्टर साहब' बोलेंगे लेकिन मेरे मरने के बाद भी लोग मेरे नाती–पोतों को कहेंगे कि इनका दादा हत्यारा था, कैदी था। मुझे दी गई उपाधि कई पीढ़ियों तक चलेगी, कभी सोचा है आपने इस बारे में?''

''आपकी बात ठीक है, कैदियों के बारे में समाज का नजरिया बदलना चाहिए।'' मैंने सान्त्वना प्रकट करते हुए कहा।

''पर कहाँ बदलता है यह नजरिया? लोग हमें चोर, डाकू, हत्यारा और भी न जाने क्या–क्या कहते हैं और भगवान भी हमारी प्रार्थना को सुनने के बजाय उनकी बात को गवाही मानकर हमारे साथ कहाँ न्याय कर पाते हैं?''

''पर कुछ न कुछ तो बात होगी कि भगवान् भी आपकी प्रार्थना नहीं सुन पाते।''

''हाँ, एक शब्द है जिसके सम्मुख हमारी वाणी मौन हो जाती है और वह शब्द है– 'प्रारब्ध'। हमारे प्रारब्ध, हमारे पिछले जन्म के कर्म ही कुछ ऐसे होंगे जिसकी हमें सज़ा मिल रही है। हम इस सज़ा को भी ईश्वर का दंड विधान मानकर स्वीकार कर रहे हैं और अपनी सज़ा को साधना के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास कर रहे हैं। इस कारण हम इस कारागार को तपस्थली बनाने का प्रयास कर रहे हैं और आप भी यहाँ इसीलिए आते हैं।''

''पंडित जी,'' मैंने इस बात का रुख बदल दिया था। अब मैं पहले प्रश्न पर ही आता हूँ।

''आप अपनी विदाई के बारे में कुछ कह रहे थे, उसी का स्पष्टीकरण कीजिए।'' मैंने विषय को बदलते हुए कहा।

''गुरु जी, जब मैं अपना थैला पकड़ कर बस स्टैंड की ओर चलने लगा तो गाँव के सारे लोग सिसकते हुए मेरे साथ ऐसे चल रहे थे, मानो किसी शवयात्रा में जा रहे हों। अन्तर यह था कि शवयात्रा में शव चार कंधों पर सवार होता है, निर्जीव होकर वह किसी के रुदन को नहीं सुन सकता लेकिन मैं तो दो पैरों पर चलने वाला तथा सबकी सिसकियों को सुनने वाला सजीव शव था। मेरा रोना तो स्वाभाविक था लेकिन बाकी लोग क्यों रो रहे हैं? इसका उत्तर भी मैंने ढूँढ लिया। ये लोग समझ रहे हैं कि शायद इस व्यक्ति के ये अंतिम दर्शन हों।'' पंडित जी फिर भावुक हो गए।

''पंडित जी, आप भावुकता के कारण अनाप–शनाप बोल रहे हैं।'' मैंने फिर उनके चेहरे पर थोड़ी सी मुस्कान लाने के लिए अंतिम प्रश्न किया–

''जब आपका बेटा बड़ा हो जायेगा तो क्या आप उसकी शादी में जायेंगे?''

यह सुनकर पंडित जी कुछ देर मौन हो गए और संभल–संभल कर बोले, ''नहीं जाऊँगा, बिल्कुल नहीं जाऊँगा। जो मैंने वहाँ भोगा है और गाँव वालों ने जिस कारुणिक ढंग से मुझे विदाइ दी है, क्या यह उनकी दृष्टि में अन्तिम विदाई नहीं थी? और जिसको आपने अन्तिम बार विदा कर दिया हो, क्या वह लौटकर आता है?'' इतना कहकर उन्होंने मुँह मोड़ लिया। मैं समझ गया कि अब पंडित जी बोलने की स्थिति में नहीं हैं। फिर भी मैंने अनुमान कर लिया कि फिर उनके नयनों से गंगा–यमुना की धाराएँ प्रवाहित हो रही होंगी।

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
9639149995

Thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 10-11/6/2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

सैक्टर -6 पंचकूला में मनाया गया महात्मा हंसराज जी का 151वाँ जन्मदिवस

हंसराज पब्लिक स्कूल में आर्य युवा समाज ने महात्मा हंसराज जी के 151वें जन्मदिवस के अवसर पर महात्मा हंसराज दिवस का आयोजन किया ।

इस अवसर पर विद्यालय के प्रांगण को केसरी बाना पहना दिया गया जोकि बलिदान और निष्काम सेवा का प्रतीक है। विभिन्न प्रतियोगिताओं से युक्त एक सुन्दर कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की शुरुआत स्वामी सम्पूर्णानन्द जी (करनाल, हरियाणा) के द्वारा वैदिक मंत्रोच्चारण की पवित्र ध्वनियों सी की गई। इस अवसर पर संत आशुतोश जी महाराज, डी.ए.वी. जगत् की प्रमुख हस्तियाँ, न्यायमूर्ति अमरजीत चौधरी, चेयरमैन हंसराज पब्लिक स्कूल, प्रमुख शिक्षाविद् श्री आर. सी. जीवन तथा अन्य डी.ए.वी. संस्थानों के प्राचार्य भी उपस्थित थे।

स्वामी सम्पूर्णानंद जी ने महात्मा हंसराज जी की ''सादा जीवन उच्च विचार'' पर आधारित जीवन शैली का विशेष उल्लेख करते हुए उपस्थित लोगों को उनके जीवन चरित से प्रेरित किया। योग के महत्त्व को बताते हुए उन्होंने कहा ''योगाभ्यास कसरत मात्र नहीं है, अपितु ऐसी–सम्पूर्ण जीवन पद्धति है जिससे व्यक्ति का समग्र विकास होता है।''

क्षेत्र के सभी स्कूलों से आए हुए प्रतियोगियों ने 'वेद मंत्रोच्चारण, भजन गायन, हवन, सम्भाषण, क्विज़, 3डी मॉडल मेकिंग जैसी प्रतियोगिताओं में बढ़–चढ़ कर भाग लिया। विभिन्न स्कूलों के तकरीबन 450 छात्रों ने इन प्रतियोगिताओं के माध्यम से महात्मा जी के जीवन चरित पर प्रकाश डालते हुए अपने हुनर का प्रदर्शन किया।

प्राचार्य श्रीमती जयाभारद्वाज ने सभी उपस्थित अतिथियों का धन्यवाद करते हुए प्रतिभागियों की भूरि–भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा ''हम सब को महात्मा जी के आदर्श आचरण से सीख लेते हुए उनकी निष्काम सेवाप्रवृति तथा अन्य गुणों को अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करना चाहिए। जिससे न केवल हमारा जीवन सफल होगा बल्कि राष्ट्र भी प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा।

डी.ए.वी.स्कूल चीका में वार्षिक पुरस्कार वितरण व सांस्कृतिक समारोह आयोजित

डायरेक्टर जे.पी.सूर डी.ए.वी. सीनियर सैकेंडरी पब्लिक स्कूल चीका के प्रांगण में शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को विशेषतौर से सम्मानित करने के लिए वार्षिक पुरस्कार वितरण व सांस्कृतिक समारोह का आयोजन किया गया। इस समारोह में बतौर मुख्यातिथि श्री जे.पी. शूर डायरेक्टर पब्लिक स्कूल, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकीय समिति, नई दिल्ली व बतौर सभापति श्री राजीव शर्मा, राज्य चुनाव कमिश्नर, हरियाणा व राजेश वैद्य, मैंबर पब्लिक सर्विस कमिशन हरियाणा ने विशेषतौर पर उपस्थित हुए। समारोह का उद्घाटन कार्यक्रम के मुख्यातिथि श्री जे.पी.शूर व अन्य गणमान्य व्यक्तियों द्वारा मंत्रोच्चारण की मधुर ध्वनि के दौरान दीप प्रज्ज्वलित करके किया गया। इसके उपरांत बच्चों ने डी.ए.वी. गान की प्रस्तुत दी गई। इस दौरान बच्चों ने वैल्कम डांस सरस्वती वंदना की प्रस्तुति देकर कार्यक्रम का शानदार आगाज किया। इसके बाद बच्चों द्वारा गॉड इज वन, सेव ऐंनिमल, सोलो डांस, डांस एक्ट रसपैक्ट ऑफ वुँमैन व अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति देकर समारोह का समा बांध दिया।

समारोह को संबोधन करते हुए मुख्यातिथि डायरेक्टर श्री जे.पी. शूर ने कहा कि डी.ए.वी. संस्थाएं बुनियादी व संस्कारगत शिक्षा देकर बच्चों के सर्वांगिण विकास करने में अहम भूमिका निभा रही हैं और अभिभावकों को गर्व होना चाहिए कि उनके बच्चे डी.ए.वी. में सपूंर्ण शिक्षा प्राप्त करके अपने सर्वांगीण विकास को करने में सक्षम हो रहे हैं। श्री कार्यक्रम को सोबोधित करते हुए राजीव शर्मा राज्य चुनाव कमिश्नर, हरियाणा ने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य केवल धनअर्जित करना नहीं हैं, बल्कि बच्चों को संस्कारगत शिक्षा देकर उनका सर्वविध विकास करना होता है। उन्होंने कहा कि बच्चों को स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे महान पुरुषों के आदर्शों को आत्मसात करके अपनी अंदरूनी शक्ति को पहचानने के लिए प्रेरित करें। प्रिंसीपल पूनम सिंह ने स्कूल की वार्षिक रिपोर्ट पढ़कर स्कूल की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। इस भव्य समारोह में कैथल जोन हरियाणा व पंजाब, पटियाला क्षेत्र से विभिन्न प्रिंसीपल व बड़ी संख्या में अभिभावक विशेषतौर पर पहुंचे हुए थे।

कुमार गंज फैंजाबाद में वैदिक चेतना एवम् चरित्र निर्माण शिविर संपन्न

नरेन्द्र देव डी.ए.वी. सीनियर सेकेण्डरी स्कूल कुमारगंज फैजाबाद (उ.प्र.) में त्रिदिवसीय वैदिक चेतना एवं चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम ठीक नौ बजे वैदिक हवन के साथ आरम्भ हुआ, जिसमें विद्यालय के प्रधानाचार्य ने मुख्य यजमान की भूमिका निभाई। विद्यार्थियों को आर्य समाज के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी। प्रधानाचार्य जी ने विद्यार्थियों को चरित्र निर्माण की शिक्षा देते हुए कहा कि शिक्षा ग्रहण करने का कोई शार्टकट रास्ता नहीं है, इसके लिए कठिन परिश्रम, पक्का इरादा एवं कठोर अनुशासन की आवश्यकता है। अपने उदबोधन में प्रधानाचार्य जी ने विद्यार्थियों को चरित्र निर्माण के ढेर सारे गुर सिखाए।

अध्यक्षता विद्यालय के प्रधानाचार्य डॉ. ओ. पी. मिश्र ने की। विद्यालय के योग शिक्षक श्री मनोजन कुमार जी ने सभी विद्यार्थियों को योगाभ्यास से परिचित कराया एवं उसके लाभ गिनाए। सभा में उपस्थित सभी बच्चों ने योगाभ्यास अपने दैनिक जीवन में उतारने की शपथ ली। अपने अभिभाषण में प्रधानाचार्य जी ने लोगों को डी.ए.वी. संस्था के उद्भव एवं विकास के बारे में विस्तार से बताया।

समापन समारोह की अध्यक्षता उर्मिला महाविद्यालय के प्रबंधक श्री चन्द्रबली सिंह ने की। विद्यालय के प्रधानाचार्य डॉ. ओ.पी. मिश्र ने अतिथियों का अभिनन्दन किया श्री सिंह ने अपने उद्बोधन में विद्यालय द्वारा आयोजित कार्यक्रम की सराहना की एवं विद्यालय के प्रधानाचार्य को बधाई देते हुए कहा कि संस्कार विहीन शिक्षा अधूरी है। यदि प्रत्येक बच्चा रात को सोने से पहले केवल पाँच मिनट अपने माँ–बाप के कार्यों के बारे में सोच कर ऑकलन करे तो वह राष्ट्र का, समाज का परिवार का आदर्श नागरिक बन सकता है। सभा को राष्ट्रीय विद्यापीठ दंटर कालेज के प्रधानाचार्य डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र, कृषि विश्वविद्यालय के मीडिया प्रभारी श्री उमेश पाठक आदि ने भी सम्बोधित किया। विद्यालय के प्रधानाचार्य डॉ. ओ.पी. मिश्र ने अतिथियों का आभार व्यक्त किया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**